खंड 4

मतभेद एवं वाद-विवाद

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 9 श्रम-विभाजनः दर्खाइम और मार्क्स*

संरचना

9.0 उद्देश्य

9.1 प्रस्तावना

9.2 सामाजिक-आर्थिक परिवेश और श्रम विभाजन से तात्पर्य

- 9.2.1 सामाजिक-आर्थिक परिवेश
- 9.2.2 श्रम विभाजन से तात्पर्य
- 9.2.3 श्रम विभाजन और आर्थिक प्रगति

9.3 श्रम विभाजन पर दर्खाइम के विचार

- 9.3.1 श्रम विभाजन के प्रकार्य
- 9.3.2 श्रम विभाजन के कारण
- 9.3.3 श्रम विभाजन के असामान्य रूप

9.4 श्रम विभाजन पर मार्क्स के विचार

- 9.4.1 सामाजिक श्रम विभाजन तथा औद्योगिक श्रम विभाजन
- 9.4.2 औद्योगिक श्रम विभाजन के परिणाम
- 9.4.3 मार्क्स द्वारा समस्या का हलः क्रांति और बदलाव

9.5 दर्खाइम तथा मार्क्स के विचारों की तुलना

- 9.5.1 श्रम विभाजन के कारण
- 9.5.2 श्रम विभाजन के परिणाम
- 9.5.3 श्रम विभाजन के संबंधित समस्याओं के समाधान
- 9.5.4 समाज के बारे में दर्खाइम का ''प्रकार्यात्क'' मॉडल और मार्क्स का ''संघर्ष'' मॉडल

9.6 सारांश

9.7 संदर्भ

9.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

9.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद, आपके लिए संभव होगाः

- दर्खाइम की पुस्तक *डिविज़न और लेबर इन सोसाइटी* में व्यक्त श्रम विभाजन के विचारों का विवेचन करना;
- श्रम विभाजन पर कार्ल मार्क्स के विचार प्रस्तुत करना; तथा
- श्रम विभाजन पद दर्खाइम और मार्क्स के विचारों की तुलना करना।

9.1 प्रस्तावना

इस इकाई में हमने ''श्रम विभाजन'' पर एमिल दर्खाइम तथा मार्क्स के विचारों में समानताओं और विषमताओं का अध्ययन किया है।

*यह इकाई ESO-13, इकाई 20 से अनुग्रहित एवं संपादित है।

प्रारम्भ में, भाग 9.2 में उस सामाजिक-आर्थिक परिवेश की संक्षेप में चर्चा की जायेगी जिसमें इन दोनों चिंतकों ने अपने विचार व्यक्त किए। इसके पश्चात् ''श्रम विभाजन'' की अवधारणा की व्याख्या की जाएगी।

भाग 9.3 में हमने श्रम विभाजन के संबंध में एमिज दर्खाइम के विचारों को समझने का प्रयास किया है। ये विचार उस ने पी.एच.डी. डिग्री के लिए प्रस्तुत अपने शोध प्रबंध ''द डिवीज़न ऑफ लेबर सोसाइटी'' (1893) में प्रस्तुत किये थे।

भाग 9.4 में इस विषय पर कार्ल मार्क्स के दृष्टिकोण का विवेचन किया जाएगा।

अंतिम भाग 9.5 में इन दोनों विचारकों के दृष्टिकोणों की तुलना की जाएगी।

9.2 सामाजिक-आर्थिक परिवेश और ''श्रम विभाजन'' से तात्पर्य

इन उप-भागों में प्रारम्भ में हमने दर्खाइम तथा मार्क्स के समय की सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था की जानकारी दी है। इससे उनके विचारों को अच्छी तरह समझने में सहायता मिलेगी। इसके बाद हमने यह जानने का प्रयास किया है कि ''श्रम विभाजन'' से तात्पर्य क्या है और इसमें क्या-क्या बातें शामिल है? श्रम विभाजन क्यों होता है? इस भाग में हमने इन्हीं पक्षों की चर्चा की है।

9.2.1 सामाजिक-आर्थिक परिवेश

दर्खाइम तथा मार्क्स के जीवन-काल में यूरोप में ''औद्योगिक क्रांति'' चल रही थी। इस पाठ्यक्रम में आपने पहले ही पढ़ा है कि औद्योगिक क्रांति के दौरान उत्पादन की तकनीकों में परिवर्तन हुए। छोटे स्तर पर घरेलू और कुटीर उत्पादन के स्थान पर कारखानों में व्यापक उत्पादन होने लगा।

यह परिवर्तन आर्थिक क्षेत्र तक ही सीमित नहीं रहा। शहरों और उनकी जनसंख्या में बढ़ोतरी हुई और इसके साथ ही गरीबी, अपराध वृद्धि तथा अन्य समस्याएं सामने आई। सामाजिक स्थिरता और व्यवस्था पर आँच आने लगी। परम्परागत सांमतवादी समाज व्यवस्था डगमगा उठी और आधुनिक औद्योगिक समाज का जन्म हुआ। इस बदलते हुए समाज को समझने के प्रयास दर्खाइम और मार्क्स द्वारा किये गये। हमें यह देखना है कि किस प्रकार श्रम विभाजन की प्रक्रिया के प्रति उन्होंने भिन्न दृष्टिकोण अपनाये। यह प्रक्रिया औद्योगीकरण के कारण दिनों-दिन महत्वपूर्ण होती जा रही थी।

आइए, अब हम यह समझने की कोशिश करें कि श्रम विभाजन से तात्पर्य क्या है।

9.2.2 श्रम विभाजन से तात्पर्य

श्रम विभाजन का अर्थ है किसी काम को कई भागों अथवा छोटी प्रक्रियाओं में विभाजित करना। ये छोटी प्रक्रियाएं अलग-अलग व्यक्तियों या समूहों द्वारा संपादित की जाती है। और इस प्रकार काम करने की गति बढ़ जाती है। आइए यह बात हम एक उदाहरण से समझें। एक कमीज़ बनाने के लिए यदि आप पूरा काम अपने आप करें तो बहुत समय लगेगा। यदि कुछ दोस्त भी इस काम में मददगार बन जाएं तो काम बहुत जल्दी निपट जाएगा। एक व्यक्ति कपड़े की कटाई करें, दूसरा मशीन से सिलाई कर दे, तीसरा हाथ की सिलाई का काम कर दे तो उसमें समय और ताकत दोनों की काफी बचत हो जाएगी। जितने समय में एक व्यक्ति अकेले एक कमीज़ तैयार करे उतने समय में मित्रों के साथ मिलकर कई कमीज़े तैयार हो सकती है। इस तरह श्रम का बंटवारा कर समय बचा तथा उत्पादकता भी बढ़ी।

श्रम विभाजन में विशेषता पनपती है अर्थात प्रत्येक व्यक्ति अपने काम का विशेषज्ञ हैं, जिससे लागत में बचत होने के साथ-साथ उत्पादकता में वृद्धि होती है।

9.2.3 श्रम विभाजन और आर्थिक प्रगति

स्काटलैंड के अर्थशास्त्री एडम स्थिम ने अपने पुस्तक *वैल्थ ऑफ़ नेशन्स* (1776) में श्रम विभाजन की अवधारणा का व्यवस्थाबद्ध विश्लेषण किर्या स्मिथ का विचार था कि श्रम विभाजन आर्थिक प्रगति का मुख्य स्त्रोत है। यही आर्थिक विकास का वाहन है। कोष्ठक 9.1 में आपको एडम स्मिथ के संबंध में और अधिक पढ़ने को मिलेगा।

कोष्ठक 9.1: एडम स्मिथ

आधुनिक अर्थशास्त्र के संस्थापकों में एडम स्मिथ का नाम गिना जाता है। एडिनबरा (स्काटलैंड) के पास स्थित किर्काल्डी नामक छोटे से शहर में 1723 में उसका जन्म हुआ। किर्काल्डी में उसकी प्रारम्भिक शिक्षा हुई और 1740 में उसने एडिनबरा विश्वविद्यालय से एम.ए. डिग्री प्राप्त की। इसके पश्चात् वह आक्सफ़ोर्ड गया। 1751 में उसे ग्लास्गों विश्वविद्यालय में नैतिक दर्शन का प्राध्यापक नियुक्त किया गया। इसी पद पर वह 1763 तक रहा और इस दौरान उसने अपनी पहली कृति *द थ्योरी ऑफ़ मॉरल सेंटिमैंटस* भी लिखी।

यूरोप में दो साल रहने के पश्चात् उसने अपनी महान कृति *द वैल्थ ऑफ़ नेशन्स* लिखनी शुरू की। यूरोप में वह अनेक दार्शनिकों से मिला, खास तौर पर फ्रांसीसी दार्शनिक वॉल्टैर, जिनसे वह अत्यंत प्रभावित हुआ। *द वैल्थ ऑफ़ नेशन्स* मार्च 1776 में प्रकाशित हुई। इस कृति में उसने आर्थिक विकास के इतिहास, कारण और सीमाओं का अध्ययन करने का प्रयास किया। स्मिथ के अनुसार आर्थिक विकास का मूल स्त्रोत इस तथ्य में है कि मनुष्य द्वारा अपनी आर्थिक स्थिति सुधारने के निरंतर प्रयास होते हैं। स्मिथ के अनुसार आर्थिक विकास की गति बढ़ाने वाली प्रक्रिया श्रम विभाजन है। अपने व्यापक अध्ययन और तीक्ष्ण प्रेक्षण द्वारा इकट्ठा किये गये अनेक आकड़ों का उसने प्रयोग किया जो कि आज भी अर्थशास्त्रियों के लिए उपयोगी हैं।

द वैल्थ ऑफ़ नेशन्स को सामाजिक विज्ञान की सबसे महत्वपूर्ण कृतियों में गिना जाता है क्योंकि यह प्रतिस्पर्धात्मक और व्यक्तिवादी औद्योगिक पूँजीवादी व्यवस्था का व्यवस्थित अध्ययन करने के पहले प्रयासों में से एक है। इस कृति में समकालीन समाज और सरकार का मूल्यांकन और कड़ी आलोचना भी शामिल हैं। स्मिथ को आर्थिक मामलों में सरकारी हस्तक्षेप से सख्त विरोध था। वह मानता था कि मनुष्यों को अपने आर्थिक लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए पूरी स्वतंत्रता देनी चाहिये, जिससे न सिर्फ व्यक्तिगत लाभ बल्कि समाजिक उद्धार भी होगा। इस कृति के प्रकाशन के पश्चात् स्मिथ एडिनबरा में बस गया। 17 जुलाई 1790 को उसका देहांत हुआ। अर्थशास्त्रीय विचार के इतिहास में एक महत्वपूर्ण हस्ती के रूप में उसे याद किया जाता है।

अभी तक हमने श्रम विभाजन के अर्थ की आर्थिक संदर्भ में व्याख्या की है। इसका सामाजिक पक्ष भी है। एमिल दर्खाइम ने अपनी पुस्तक *द डिवीज़न ऑफ़ लेबर इन सोसाइटी* में इसी समाजिक पहलू का विवेचन किया। अगले भाग में इस पुस्तक के प्रमुख मुद्दों की चर्चा की जाएगी। परंतु पहले बोध प्रश्न 1 को तो पूरा कर लें।

बोध प्रश्न 1

i) निम्नलिखित वाक्यों में खाली स्थान भरिए।

क) औद्योगिक क्रांति के दौरान वस्तुओं के ..... उत्पादन के स्थान पर कारखानों में ..... उत्पादन होने लगा।

ख) औद्योगीकरण के कारण ..... अधिक महत्वपूर्ण होता जा रहा था।

ग) ..... ने कहा कि श्रम विभाजन आर्थिक विकास का मुख्य स्त्रोत हैं।

ii) निम्नलिखित वाक्यों के सामने गलत या सही लिखिए।

क) श्रम विभाजन से समय की बरबादी होती है। गलत/सही

ख) दर्खाइम श्रम विभाजन के आर्थिक पहलू का अध्ययन करना चाहता था। गलत/ सही

ग) श्रम विभाजन से विशेषज्ञता को बढ़ावा मिलता हैं। गलत/सही

9.3 श्रम विभाजन पर दर्खाइम के विचार

इकाई 18 में हमने पढ़ा कि समाजशास्त्री के रूप में दर्खाइम का मुख्य विषय सामाजिक व्यवस्था तथा एकीकरण रहा। समाज को एक सूत्र में पिरोए रखने वाली शक्ति कौन-सी हैं ? किन बातों के कारण यह एक पूर्ण इकाई बना रहता है? पहले हमने यह देखा है कि दर्खाइम के पूर्ववर्ती विद्वानों जैसे आगॅस्ट कॉम्ट और हर्बर्ट स्पेंसर के विषय पर क्या विचार थे।

ऑगस्ट कॉम्ट की मान्यता है कि सामाजिक तथा नैतिक सर्वसम्मति ही समाज को एक बनाए रखने के लिए जिम्मेदार है। विचारों, मूल्यों, नियमों आदि की समानता मनुष्यों और समाज को एक सूत्र में पिरोए रखती है।

हर्बर्ट स्पेंसर का विचार इससे भिन्न है। उसके अनुसार व्यक्तियों के निजी स्वार्थों के कारण समाज एकजुट बना रहता है। एकताबद्ध रहने से व्यक्तिगत स्वार्थों की पूर्ति होती है और इस प्रकार सामाजिक जीवन संभव हो जाता है।

किन्तु दर्खाइम के विचार इन दोनों दृष्टिकोणों से मेल नहीं खाते। कॉम्ट के कथनानुसार यदि नैतिक सर्वसम्मति के कारण ही समाज बना रहता है तो आधुनिक औद्योगिक समाज का टिके रहना असंभव है। आधुनिक समाज में विषमता गतिशीलता और कार्यों तथा मूल्यों में विविधता विद्यमान है। ऐसे समाज में व्यक्तिवाद को महत्व दिया जाता है। दर्खाइम ने स्पेंसर के इस कथन का भी खंडन किया कि स्वार्थ के कारण समाज एकजुट रहता है। यदि व्यक्तिगत स्वार्थ ही सब कुछ होता तो उसके कारण पैदा होने वाली अंधी होड़ तथा कटुता के कारण समाज का आधार ही टूट जाता। प्रत्येक व्यक्ति दूसरे ही हानि की परवाह किए बिना अपने ही फायदे के लिए संघर्ष करता रहता। इस प्रकार टकराव तथा तनाव से समाजिक विखंडन हो जाता।

प्रश्न यह है कि क्या व्यक्तिवाद, सामाजिक एकीकरण तथा सामंजस्य का शत्रु है? क्या औद्योगीकरण से सामाजिक एकता छिन्न-भिन्न हो जाएगी ? दर्खाइम के विचार इससे कुछ भिन्न हैं।

उसके अनुसार औद्योगिक क्रांति से पहले और बाद के समाजों में समाजिक एकता के आधार तथा मूलभूत अलग-अलग रहे हैं। वह यह दिखाता है कि किस प्रकार विषमता, भिन्नता तथा जटिलता के ग्रस्त समाज में विशेषज्ञता अथवा श्रम विभाजन से एकता का संचार होता है। जैसा कि आपने खंड 3 में पढ़ा, ये वे समाज हैं जो सावयवी एकात्मता पर आधारित हैं। अगले उप-भागों में हमने यह जानने की कोशिश की है कि दर्खाइम ने निम्नलिखित संदर्भों में श्रम विभाजन का विवेचन किस प्रकार किया।

i) श्रम विभाजन के कार्य

ii) श्रम विभाजन के कारण

iii) श्रम विभाजन की सामान्य रूपों से भिन्नता अर्थात् असामान्य रूप

9.3.1 श्रम विभाजन के प्रकार्य

जैसा कि आपने पहले पढ़ा है दर्खाइम ने समाजों का निम्नलिखित वर्गीकरण किया :

i) ''यांत्रिक एकात्मता'' पर आधारित समाज

ii) ''सावयवी एकात्मता'' पर आधारित समाज

i) **यांत्रिक एकात्मता**

जैसा कि आपको मालूम है, यांत्रिक एकात्मता से अभिप्राय है समरूपता अथवा एक जैसा होने एक एकात्मता। ऐसी अनेक समरूपताएं तथा घनिष्ठ सामाजिक रिश्तें होते हैं जो व्यक्ति को उसके समाज से बांधे रहते हैं। सामूहिक चेतना अत्यंत सुदृड़ होती है। सामूहिक चेतना से हमारा अभिप्राय उन समान विश्वासों तथा भावनाओं से है जिनके आधार पर समाज के लोगों के आपसी संबंध परिभाषित होते हैं। सामूहिक चेतना की शक्ति इस प्रकार के समाजों को एकजुट रखती है और व्यक्तियों को दृढ़ विश्वासों और मूल्यों के माध्यम से जोड़े रखती हैं। इन मूल्यों को उपेक्षा या उल्लंघन को बहुत गंभीर माना जाता है। दोषी लोगों को कठोर दण्ड मिलता है। यहाँ यह बताना आवश्यक है कि यांत्रिक एकात्मता पर आधरित समाज में एकरूपता अथवा समरूपता की एकात्मता है। व्यक्तिगत भिन्नताए बहुत कम होती हैं तथा श्रम का विभाजन अपेक्षाकृत सरल स्तर का होता है।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि इस प्रकार के समाजों में व्यक्तिगत चेतना सामूहिक चेतना में विलीन हो जाती है।

ii) **सावयवी एकात्मता**

सावयवी एकात्मता से दर्खाइम का तात्पर्य है भिन्नताओं एवं भिन्नताओं की पूरकता पर आधारित एकात्मता। एक कारखाने का उदाहरण लें। वहां कामगार तथा प्रबंधक के कार्य, आय, सामाजिक प्रस्थिति आदि में काफी अंतर है। किन्तु साथ ही वे एक-दूसरे के पूरक हैं। श्रमिकों के बिना प्रबंधक का होना व्यर्थ है और श्रमिकों को संगठित होने के लिए प्रबंधकों की आवश्यकता है। उनका अस्तित्व ही एक दूसरे पर निर्भर हैं।

सावयवी एकात्मता पर आधारित समाज औद्योगीकरण के विकास से प्रभावित और परिवर्तित होते हैं। इसलिए श्रम विभाजन इस प्रकार के समाजों का उल्लेखनीय पक्ष हैं। सावयवी एकात्मता पर आधारित समाज वे समाज होते हैं, जिनमें विषमता, भिन्नता तथा विविधता होती है। विषमरूपी समाज में बढ़ती हुई ये जटिलता विभिन्न तरह के व्यक्तित्व में संबंधों तथा समस्याओं में प्रतिबिंबित होती है। ऐसे समाजों में व्यक्तिगत चेतना विशिष्ट हो जाती

है और सामूहिक चेतना दुर्बल होने लगती है। व्यक्तिवाद का महत्व उतरोतर बढ़ता जाता है। यांत्रिक एकात्मता में सामाजिक प्रतिमान का जो बंधन व्यक्तियों पर रहता है, वह ऐसे समाजों में ढीला पड़ जाता है। व्यक्तिगत स्वतंत्रता तथा स्वायतता का सावयविक एकात्मता पर आधारित समाज में उतना ही महत्व होता है, जितना सामाजिक एकात्मता का महत्व यांत्रिक एकात्मता पर आधारित समाजों में होता है।

क्या इसका अर्थ यह है कि आधुनिक समाज में एकीकरण की कोई आवश्यकता नहीं है ? दर्खाइम का कहना है कि श्रम विभाजन ऐसी प्रक्रिया है, जो समाज को एकजुट रखने में सहायक होगी। किन्तु यह कैसे होगा ? जैसे कि हमने पहले देखा है, श्रम विभाजन का अर्थ कुछ खास कामों को मिल-जुलकर करना हैं। दूसरे शब्दों में इसे सहयोग कहा जा सकता है। काम में अधिक विभाजन के साथ साथ दो मुख्य परिणाम सामने आते हैं। एक ओर तो प्रत्येक व्यक्ति अपने क्षेत्र में विशेषज्ञ है जिससे अपने विशेष क्षेत्र में नई पहल तथा सृजन का समावेश संभव है। दूसरी ओर, व्यक्ति की समाज पर अधिकाधिक निर्भरता होती जाती है। सहयोग तथा पूरकता इस प्रकार के समाजों के अनिवार्य तत्व होते हैं। दर्खाइम के अनुसार, इस प्रक्रिया से उत्पन्न सावयविक एकात्मा यांत्रिक एकात्मता की तुलता में उच्च स्तर की होती है। इससे यह संभव होता है कि व्यक्ति अपनी पहल और स्वतंत्रता से काम लें और साथ ही एक-दूसरे से तथा समाज से जुड़े रहें। इस प्रकार जो प्रक्रिया व्यक्तिवाद तथा सामाजिक एकता दोनों के विकास में सहायक हैं, वह हैं श्रम विभाजन। इस अवधारणा के तात्पर्य को पूरी तरह से समझने हेतु सोचिए और करिए 1 को पूरा करें।

सोचिए और करिए 1

घर-परिवार में श्रम का विभाजन कैसे होता हैं? निम्नलिखित मुद्दों पर लगभग दो पृष्ठ की टिप्पणी लिखिए। i) कार्य का स्वरूप और विभाजन, ii) घर-परिवार को सुचारू रूप से चलाने के लिए श्रम-विभाजन किस हद तक सहायक अथवा बाधक सिद्ध होता है। यदि संभव हो तो अध्ययन केन्द्र के अन्य विद्यार्थियों की टिप्पणियों से अपनी टिप्पणी का मिलान कीजिए।

आइए, अब हम दर्खाइम द्वारा बताए गए श्रम विभाजन के कारणों का विवेचन करें।

9.3.2 श्रम विभाजन के कारण

श्रम विभाजन की प्रक्रिया के लिए कौन-से तत्व ज़िम्मेदार हैं या इसके कारण क्या हैं ? दर्खाइम ने इस प्रश्न का समाजशास्त्रीय उत्तर प्रस्तुत किया है। उसके अनुसार समाज में भौतिक तथा नैतिक सघनता में वृद्धि के फलस्वरूप श्रम विभाजन अस्तित्व में आता है। भौतिक सघनता (material density) से दर्खाइम का अभिप्राय है किसी समाज में व्यक्तियों की संख्या बढ़ना अर्थात् जनसंख्या वृद्धि। नैतिक सघनता (moral density) से तात्पर्य है संख्या में वृद्धि के फलस्वरूप लोगों के परस्पर संबंधों में तीव्रता आना।

भौतिक एवं नैतिक सघनता में बढ़ोतरी के परिणामस्वरूप अस्तित्व के लिए संघर्ष पैदा होता है। यांत्रिक एकात्मता वाले समाज में लोगों में यदि समानता पनपती है तो एक जैसे लाभ और स्त्रोत प्राप्त करने के लिए संघर्ष और प्रतियोगिता भी जन्म लेते हैं। जनसंख्या में वृद्धि और प्राकृतिक संसाधनों में कमी आने से यह होड़ और तेज़ हो जाएगी। किन्तु श्रम विभाजन के फलस्वरूप व्यक्ति विभिन्न क्षेत्रों और कार्यों के विशेषज्ञ बन जाते हैं। इस प्रकार वे सह-अस्तित्व से रहते हैं, तथा एक-दूसरे के पूरक बनते है। किन्तु यह आदर्श स्थिति क्या सदैव बनी रहती हैं ? दर्खाइम का इस संबंध में क्या मत हैं, इसकी भी समीक्षा कर ली जाए।

9.3.3 श्रम विभाजन के असामान्य रूप

यदि-श्रम विभाजन समाज में नई तथा उच्चतर एकात्मता कायम करने में सहायता देता है तो तत्कालीन यूरोपीय समाज में अव्यवस्था क्यों थी ? क्या श्रम विभाजन से समस्याएं पैदा हो रही थी ? दर्खाइम के अनुसार, उस समय श्रम को जो विभाजन हो रहा था, वह सामान्य प्रकार का नहीं था, जिसके बारे में उसने लिखा था। समाज में असामान्य प्रकार का श्रम विभाजन हो रहा था या सामान्य श्रम विभाजन के विपरीत काम हो रहा था। संक्षेप में इनमें निम्नलिखित असामान्य रूप शामिल थे।

i) **प्रतिमानहीनता (anomie)**

इसका अर्थ है एक ऐसी स्थिति जिसमें सामाजिक नियम निरर्थक बन गये हैं। भौतिक जीवन में तेज़ी से बदलाव आता है, परन्तु नियम, रीति-रिवाज तथा मूल्य उसी गति से नहीं बदलते। ऐसा लगता है कि नियम और प्रतिमान पूरी तरह टूट गये हैं। कार्यक्षेत्र में यह स्थिति कामगारों तथा प्रबंधकों के बीच टकराव के रूप में प्रकट होती है। काम में गिरावट आती है, व्यर्थ के काम होते हैं तथा वर्ग-संघर्ष में वृद्धि होती है।

सरल शब्दों में कहा जा सकता है कि लोग काम करते हैं और उत्पादर भी करते हैं, किन्तु उन्हें अपने काम की कोई सार्थकता प्रतीत नहीं होती। उदाहरण के लिए कारखाने में असेम्बली लाइन के श्रमिकों को दिनभर कील ठोंकने, पेंच कसने जैसे सामान्य तथा उकता देने वाले काम करने पड़ते हैं। उन्हें अपने काम की कोई सार्थकता नज़र नहीं आती। उन्हें यह एहसास नहीं कराया जाता कि वे कोई उपयोगी काम कर रहे हैं। उन्हें यह भी नहीं बताया जाता कि वे समाज के महत्वपूर्ण अंग है। कारखानें के काम से संबंधित नियमों और विधियों में इतना परिवर्तन नहीं किया गया कि श्रमिकों के काम को सार्थक माना जाए और उन्हें यह अनुभूति हो कि समाज में उनका भी महत्वपूर्ण स्थान है।

ii) **असमानता (inequality)**

दर्खाइम के अनुसार, अवसर की असमानता पर आधारित श्रम विभाजन स्थायी एकता लाने में विफल रहता है। श्रम विभाजन के इस प्रकार के असमान्य रूप से व्यक्तियों में समाज के प्रति कुंठा और नाराज़गी पैदा होती है। इस प्रकार तनाव, कटुता, द्वेष तथा विरोध-भाव पनपने लगते हैं। भारतीय जाति-व्यवस्था को असमानता पर आधारित श्रम विभाजन का उदाहरण माना जा सकता है। लोगों को अपनी क्षमता नहीं बल्कि जन्म के आधार पर विशेष प्रकार के काम करने पड़ते है। यह स्थिति उन लोगों के लिए अत्यंत दुखदायी हैं, जो कुछ अन्य संतोषप्रद तथा लाभप्रद काम करने के इच्छुक हैं, किन्तु उचित अवसरों से वंचित हैं।

iii) **अपर्याप्त संगठन**

इस असामान्य रूप में श्रम विभाजन का मूल उद्देश्य ही समाप्त हो जाता है। काम समुचित रूप से संगठित तथा समन्वित नहीं होता। कामगार प्रायः निरर्थक कामों में लगे रहते हैं। कार्य एकता का अभाव रहता है। इसलिए एकात्मता भंग हो जाती है और अव्यवस्था फैल जाती है। बहुत से दफ्तरों में आपने अपने कर्मचारियों को खाली बैठे देखा होगा। कई लोगों को तो पता ही नहीं होता कि उनका काम क्या है। जब अधिकतर लोगों को अपने कर्तव्य की जानकारी तक न हो तब सामूहिक कार्य कठिन हो जाता है। श्रम विभाजन से उत्पादकता और एकीकरण में वृद्धि होनी चाहिए। जो

उदाहरण हमने अभी बताया हैं, उससे विपरीत स्थिति बन जाती है अर्थात् उत्पादकता कम होती है तथा एकीकरण का ह्रास होता है (देखिए गिडन्स, 1978:21.23)।

इस इकाई में हमने अभी तक यह देखा है कि दर्खाइम श्रम विभाजन को केवल आर्थिक ही नहीं, सामाजिक क्रिया भी मानता है। उसके अनुसार इसकी भूमिका आधुनिक औद्योगिक समाज को एकजुट बनाना है। जो भूमिका सामूहिक चेतना यांत्रिक एकात्मता के मामले में निभाती थी, वहीं भूमिका श्रम विभाजन सावयविक एकात्मता के लिए निभाता है। श्रम विभाजन का जन्म बढ़ती हुए भौतिक तथा नैतिक सघनता के कारण उपजी अस्तित्व की होड़ से होता है। विशेषज्ञता ऐसी स्थिति का निर्माण कर सकती है जिसमें विभिन्न व्यक्ति एक-साथ रह सकते हैं और परस्पर सहयोग कर सकते हैं। परन्तु समकालीन यूरोपीय समाज में श्रम-विभाजन के भिन्न और नकारात्मक परिणाम सामने आए। सामाजिक व्यवस्था के लिए गंभीर खतरा पैदा हो गया।

दर्खाइम इस स्थिति को श्रम विभाजन के सामान्य रूप से पृथकता का नाम देता है। जैसा कि ऊपर कहा गया है, वह इसे तीन रूपों में परिभाषित करता है। ये रूप हैः

(i) प्रतिमानहीनता जिसमें श्रम विभाजन से संबंधित नए नियम तथा सिद्धांत अस्तित्व में नहीं आते, (ii) असमानता, जिसके फलस्वरूप असंतोष, तनाव और संघर्ष पैदा होता हैं, और (iii) अपर्याप्त संगठन, जिससे श्रम का बंटवारा निरर्थक बन जाता है और बिखराब तथा विखंडन को बल मिलता है।

आइए, अब हम अगले भाग की ओर बढ़ें तथा श्रम विभाजन के बारे में कार्ल मार्क्स के विचारों का अध्ययन करें। किन्तु उससे पूर्व बोध प्रश्न 2 को पूरा कीजिए।

बोध प्रश्न 2

i) निम्नलिखित कथनों में से सही अथवा गलत बताइए।

क) ऑगस्ट कॉम्ट ने सामाजिक एकता की व्याख्या व्यक्तिगत हितों के संदर्भ में की। सही / गलत

ख) दर्खाइम मानता था कि नैतिक सर्वसम्मति आधुनिक औद्योगिक समाज को बांधे हुए हैं। सही / गलत

ग) दर्खाइम के अनुसार, व्यक्तिवाद तथा सामाजिक एकीकरण एक-दूसरे के शत्रु हैं। सही / गलत

घ) दर्खाइम के अनुसार, सावयविक एकात्मता में सामूहिक चेतना और सुदृढ़ हो जाती है। सही / गलत

ii) निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर चार पंक्तियों में दीजिए।

क) दर्खाइम के अनुसार सावयविक एकात्मता यांत्रिक एकात्मता से उच्च क्यों हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

ख) भौतिक तथा नैतिक सघनता श्रम विभाजन का कारण कैसे बनती हैं ?

.....

.....

.....

.....

.....

ग) प्रतिमानहीनता से दर्खाइम का क्या अभिप्राय हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

9.4 श्रम विभाजन पर मार्क्स के विचार

अगले उप-भागों में हमने निम्नलिखित पक्षों को मार्क्स की दृष्टि से समझने का प्रयास किया है :

i) सामाजिक श्रम विभाजन तथा उद्योग अथवा निर्माण में श्रम विभाजन के बीच मार्क्स द्वारा किया गया भेद।

ii) औद्योगिक श्रम विभाजन के विभिन्न पक्ष।

iii) श्रम विभाजन से उत्पन्न समस्याओं के लिए मार्क्स के समाधान आर्थात् क्रांति और परिवर्तन।

9.4.1 सामाजिक श्रम विभाजन तथा औद्योगिक श्रम विभाजन

सबसे पहले यह समझना होगा कि मार्क्स के अनुसार श्रम विभाजन का अर्थ क्या है। मार्क्स ने अपनी पुस्तक *कैपीटल* के पहले भाग में इस विषय का विवेचन करते हुए श्रम विभाजन के दो प्रकारों का उल्लेख किया है। ये दो प्रकार हैं: सामाजिक श्रम विभाजन और औद्योगिक श्रम विभाजन।

i) **सामाजिक श्रम विभाजन**: यह सभी समाजों में विद्यमान है। यह ऐसी प्रक्रिया है जिसका होना अनिवार्य है ताकि किसी समाज के सदस्य सामाजिक एंव आर्थिक जीवन को व्यवस्थित बनाए रखने के लिए आवश्यक कार्यों को सफलतापूर्वक सम्पन्न कर सकें। यह समाज में श्रम के सभी उपयोगी रूपों को विभाजित करने की जटिल प्रणाली है। उदाहरण के लिए कुछ लोग किसान हैं जो खाद्य पदार्थ का उत्पादन करते हैं और कुछ हस्तशिल्प की वस्तुएं तो कुछ हथियार एंव अन्य सामान तैयार करते हैं।

सामाजिक श्रम विभाजन से विभिन्न समूहों के बीच वस्तुओं के आदान-प्रदान को बढ़ावा मिलता हैं। उदाहरण के लिए कुम्हार द्वारा बनाए गए मिट्टी के बर्तनों के बदले किसान के चावल या बुनकर से कपड़ा प्राप्त किया जा सकता है। इस प्रकार के लेन-देन से विशेषज्ञता पनपती है।

ii) **औद्योगिक श्रम विभाजन**: यह प्रक्रिया औद्योगिक समाजों में विद्यमान हैं, जहां पूँजीवाद तथा उत्पादन की फैक्टरी व्यवस्था प्रचलित है। इस प्रक्रिया में किसी वस्तु के निर्माण को अनेक प्रक्रियाओं में बांट दिया जाता है। प्रत्येक श्रमिक का काम एक छोटी प्रक्रिया (जैसे कि एसेम्बली लाइन का काम) तक सीमित रहता है। यह काम सामान्यतः नीरस तथ उकता देने वाला होता है। श्रम के इस विभाजन का उद्देश्य एकदम सरल है। यह है उत्पादकता बढ़ाना। जितनी अधिक उत्पदाकता होगी, उतना ही ज्यादा उससे उत्पन्न अतिरिक्त मूल्य (surplus value) होगा। यह अतिरिक्त मूल्य ही पूँजीपतियों को अपनी उत्पादन प्रक्रिया को इस प्रकार नियोजित करने की प्रेरणा देता है, जिससे कम से कम लागत पर अधिक से अधिक उत्पादन किया जाए। आधुनिक औद्योगिक समाजों में श्रम विभाजन के बल पर ही माल का व्यापक स्तर पर उत्पादन हो रहा है। सामाजिक श्रम विभाजन में स्वतंत्र उत्पादक अपनी वस्तुएं तैयार कर दूसरे स्वतंत्र निर्माताओं के साथ उनका आदान-प्रदान करते हैं, किन्तु औद्योगिक श्रम विभाजन भिन्न हैं इसमें कामगार का अपने उत्पाद से कोई सरोकार नहीं रहता। आइए अब हम इस मुद्दे पर अधिक विस्तार से अध्ययन करें जिससे औद्योगिक श्रम विभाजन के परिणाम को समझा जा सकता हैं। औद्योगिक श्रम विभाजन को पूरी तरह से समझने हेतु सोचिए और करिए 2 को पूरा करें।

सोचिए और करिए 2

किसी कारखाने अथवा हस्त-शिल्प उद्योग में श्रम विभाजन और उसके संभावित परिणामों का अध्ययन कीजिए। इसके आधार पर लगभग दो पृष्ठ की टिप्पणी लिखिए। यदि संभव हो तो अध्ययन केन्द्र के अन्य विद्यार्थियों की टिप्पणियों से अपनी टिप्पणी का मिलान कीजिए।

9.4.2 औद्योगिक श्रम विभाजन के परिणाम

i) **लाभ पूँजीपतियों के हिस्से में**: जैसा कि पहले बताया गया हैं, औद्योगिक श्रम विभाजन से अतिरिक्त मूल्य के अधिक से अधिक उत्पादन में सहायता मिलती हैं, जिससे पूँजी की मात्रा बढ़ती जाती है। मार्क्स ने अत्यंत महत्वपूर्ण प्रश्न किया है कि लाभ किसके हिस्से में जाता हैं ? उसके अनुसार लाभ पर उनका हक नहीं हैं, जो वास्तव में उत्पादन करते हैं, बल्कि पूँजीपतियों के हिस्से में जाता है। लाभ पर उनका हक नही हैं, जो वास्तव में उत्पादन करते हैं, बल्कि उनका कहना है जिनका उत्पादन के साधनों पर नियंत्रण है। मार्क्स के अनुसार श्रम विभाजन तथा निजी सम्पत्ति की प्रथा ये दोनों तत्व मिलकर पूँजीपति की ताकत को और मजबूत करते हैं। चूंकि उत्पादन के साधनों का मालिक पूँजीपति हैं, इसलिए उत्पादन की प्रक्रिया इस ढंग निर्धारित की जाती है कि उसका अधिकतम लाभ पूँजीपति को ही मिले।

ii) **कामगारों का अपने उत्पादन पर नियंत्रण नहीं रहता**: मार्क्स के अनुसार, निर्माण में श्रम विभाजन के फलस्वरूप श्रमिक का उत्पादन के वास्तविक निर्माता का दर्जा समाप्त हो जाता है। इसके विपरित, वे पूँजीपतियों द्वारा तैयार की गई उत्पादन श्रृंखला की एक कड़ी मात्र बन जाते हैं। (देखिये चित्र 20.2: उत्पादन में श्रम विभाजन)। श्रमिकों को उनके अपने श्रम से बनाई गई वस्तु से अलग कर दिया जाता है। सच तो यह है कि वे अपने श्रम में अंतिम परिणाम को देख तक नहीं पाते। उसके क्रय-विक्रय पर उनका कोई नियंत्रण नहीं होता। उदाहरण के लिए भारत में वांशिग मशीन के कारखाने की असेम्बली लाइन में काम करने वाला मज़दूर क्या अंतिम रूप

से तैयार वांशिग मशीन को देख पाता है। हाँ हो सकता है किसी विज्ञापन अथवा दुकान में रखी वांशिग मशीन को वह देख लेता है। वह उस मशीन के निर्माण की प्रक्रिया का एक छोटा सा हिस्सा मात्र है और न उसे बेचने में उसकी कोई दखल है और न ही वह उसे खरीद पाने में सक्षम है। उस पर वास्तविक नियंत्रण पूँजीपतियों का है। स्वतंत्र निर्माता या उत्पादक के रूप में श्रमिक का अस्तित्व मिट चुका है। उत्पादन प्रक्रिया ने श्रमिक को गुलाम बना दिया है।

iii) **श्रमिक वर्ग का अमानवीकरण**: श्रम विभाजन से युक्त पूँजीवादी प्रणाली में वस्तुओं के स्वतंत्र उत्पादक के रूप में श्रमिकों का अस्तित्व समाप्त हो जाता है। वे उत्पादन के लिए आवश्यक श्रम शक्ति के पूर्तिकर्ता मात्र रह जाते हैं। श्रमिकों का अलग व्यक्तित्व उसकी जरूरतें तथा इच्छाएँ पूँजीपति के लिए कोई महत्व नहीं रखतीं। पूँजीपति की चिंता यही रही है कि मज़दूरी या वेतन के बदले पूँजीपति श्रमिक की श्रम-शक्ति मिलती रहे। मार्क्स के अनुसार श्रमिक वर्ग का मानव-रूप इस प्रकार विलुप्त हो जाता है और श्रम-शक्ति एक वस्तु बन कर रह जाती है जिसे पूँजीपति द्वारा खरीदा जाता है।

iv) **अलगाव**: मार्क्स ने औद्योगिक जगत की यथार्थ स्थितियों को समझने की जो अवधारणाएँ विकसित की हैं, उनमें से एक महत्वपूर्ण अवधारणा है अलगाववाद जिसके बारे में खंड 2 में जानकारी दी जा चुकी है।

उत्पादन तथा श्रम विभाजन की प्रक्रिया श्रमिक को उकता देने वाले काम बार-बार करने को विवश करती हैं। श्रमिक का अपने ही काम पर कोई नियंत्रण नहीं होता। जिस वस्तु का निर्माण होता है, उसकी उत्पादन प्रक्रिया के श्रमिक भाग हैं परंतु उससे तथा अपने सहयोगी श्रमिकों और अंततः पूरे समाज से श्रमिक एक तरह से कट जाते हैं (देखे कोलकोवस्की 1978:281.287)। नियंत्रण रहने, अमानवीय और अलगाव आदि की समस्याओं का क्या कोई समाधान है? मार्क्स का कहना है कि निजी सम्पत्ति की व्यवस्था समाप्त करना और वर्ग-विहीन समाज की रचना से ही इन समस्याओं का समाधान होगा।

9.4.3 मार्क्स द्वारा समस्या का हलः क्रांति और बदलाव

क्या श्रमिक को उत्पादन प्रक्रिया का गुलाम बनने को विवश किया जाये ? क्या श्रमिकों की रचनात्मक शक्ति तथा उनके अपने काम पर नियंत्रण को समाप्त करके उन पर श्रम विभाजन हमेशा के लिए थोपा जा सकता है ? मार्क्स का कहना है कि सामाजिक श्रम विभाजन का जारी रहना आवश्यक है ताकि मानव जीवन की भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके। परन्तु औद्योगिक श्रम विभाजन को नया रूप देना होगा। सर्वहारा वर्ग की क्रांति के माध्यम से निजी सम्पत्ति को समाप्त करके श्रमिक वर्ग अपने ऊपर थोपे गए श्रम विभाजन से मुक्ति पा सकता है। मार्क्स की मान्यता है कि साम्यवादी समाज की स्थापना से उत्पादन के साधनों पर श्रमिकों का स्वामित्व एंव नियंत्रण हो सकेगा। पुनर्गठित उत्पादन प्रक्रिया के फलस्वरूप प्रत्येक व्यक्ति अपनी क्षमता को पहचानेगा और अपनी रचनात्मक शाक्ति का उपयोग करेगा। मार्क्स की मान्यता है कि साम्यवादी समाज की स्थापना से उत्पादन के साधनों पर श्रमिकों का स्वामित्व एंव नियत्रंण हो सकेगा। पुनर्गठित उत्पादन प्रक्रिया के फलस्वरूप प्रत्येक व्यक्ति अपनी क्षमता को पहचानेगा और अपनी रचनात्मक शक्ति का उपयोग करेगा। मार्क्स और ऐंगल्स (जर्मन *आइडियोलॉजी*, भाग 1, अनुभाग I.A.I) ने अपने दृष्टिकोण को निम्नलिखित शब्दों में व्यक्त किया है।

साम्यवादी समाज में, जिसमें किसी व्यक्ति का कोई विशिष्ट कार्यक्षेत्र नहीं होता, किन्तु, प्रत्येक व्यक्ति अपनी इच्छा के अनुसार किसी भी कार्य में दक्षता प्राप्त कर सकता हैं, समाज

ही सामान्य उत्पादन को नियंत्रित करता है और इस प्रकार मेरे लिए यह संभव हो जाता है कि मैं आज एक काम करूँ तथा कल कोई और कार्य कर सकूं। संभव है कि मैं सबेरे शिकार पर निकल जाऊँ, दोपहर बाद मछली पकड़ूं, शाम को पशु-पालन करूं और रात्रिभोज के पश्चात् आलोचना करूं। ये सभी काम शिकारी, मछुआरा, चरवाहा या आलोचक कहलाए बिना अपनी इच्छा के अनुसार करना मेरे लिए संभव है।

इस चर्चा में हमने देखा कि कार्ल मार्क्स ने सामाजिक श्रम विभाजन और औद्योगिक श्रम विभाजन में किस प्रकार भेद किया। सभी समाजों में भौतिक जीवन के आधार के लिए सामाजिक श्रम विभाजन आवश्यक है। किन्तु औद्योगिक श्रम-विभाजन औद्योगीकरण तथा पूँजीवाद के विकास के कारण ही अस्तित्व में आता है।

उत्पादन में श्रम विभाजन के अस्तित्व के निम्नलिखित पक्ष हैं।

i) लाभ पूँजीपति के हिस्से में जाता है।

ii) श्रमिकों का अपने उत्पादों पर नियंत्रण नहीं रहता।

iii) श्रमिक वर्ग का अमानवीकरण होता है।

iv) सभी स्तरों पर अलगाव पैदा होता हैं।

इन समस्याओं से निपटने के लिए मार्क्स ने ''सर्वहारा की क्रांति'' का उद्घोष किया, जिसमें निजी सम्पत्ति समाप्त हो जाएगी और उत्पादन के साधनों का स्वामित्व मज़दूरों के हाथों में चला जाएगा। इसके फलस्वरूप उत्पादन प्रक्रिया स्वयं श्रमिकों द्वारा विकसित और संचालित हो सकेगी तथा श्रमिकों को अपनी रचनात्मक शक्ति को इस्तेमाल करने और विभिन्न कार्यों में श्रेष्ठता प्राप्त करने के अवसर मिल सकेगे। उकता देने वाली तथा शोषक कार्य पद्धति उनपर नहीं थोपी जाएगी।

आइए, अब बोध प्रश्न 3 को पूरा करें।

बोध प्रश्न 3

i) निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर तीन पंक्तियों में दीजिए।

क) ''सामाजिक श्रम विभाजन'' से मार्क्स का क्या अभिप्राय था ?

.....

.....

.....

.....

.....

ख) औद्योगिक श्रम विभाजन के फलस्वरूप श्रमिक अपने उत्पादों पर नियंत्रण खो देते है।'' इस कथन की व्याख्या कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

ii) सही विकल्प पर निशान लगाइए।

क) मार्क्स के अनुसार, श्रमिक वर्ग का अमानवीकरण हो जाता है क्योंकि

i) कारखानों में मशीनों से काम होने लगता है।

ii) श्रमिकों को श्रम-शक्ति का पूर्तिकर्ता मात्र समझा जाता है।

iii) श्रमिक अपने द्वारा निर्मित वस्तुए नहीं खरीद सकते।

ख) उत्पादन के प्रति श्रमिक अलगाव महसूस करते हैं क्योंकि

i) उन्हें एक जैसे काम बार-बार करने पड़ते हैं।

ii) लाभ में उनका कोई हिस्सा नहीं होता और अपने उत्पादों पर उनका कोई नियंत्रण नहीं होता।

iii) वे वेतन के बदले अपनी श्रम शक्ति बेचते हैं।

ग) साम्यवादी क्रांति के फलस्वरूप

i) श्रम विभाजन पूर्णतया समाप्त हो जाएगा।

ii) औद्योगिक श्रम विभाजन में कोई परिवर्तन नहीं होगा।

iii) उत्पादन प्रक्रिया स्वंय श्रमिकों द्वारा विकसित और संचालित होगी।

9.5 दर्खाइम तथा मार्क्स के विचारों की तुलना

हमने श्रम विभाजन के बारे में दर्खाइम तथा मार्क्स के विचारों का अलग-अलग अध्ययन किया है। आइए, अब हम उनके विचारों का तुलानात्मक अध्ययन करें। आसानी के लिए निम्नलिखित शीर्षकों के अंतर्गत श्रम विभाजन पर दोनों चिंतकों के विचारों की तुलना की जा रही है।

i) श्रम विभाजन के कारण

ii) श्रम विभाजन के परिणाम

iii) श्रम विभाजन से संबंधित समस्याओं के समाधान

iv) समाज के बारे में दर्खाइम का प्रकार्यात्मक मॉडल और मार्क्स का संघर्ष मॉडल

9.5.1 श्रम विभाजन के कारण

दर्खाइम और मार्क्स, दोनों ने सरल पारम्परिक समाज और जटिल औद्योगिक समाज में विद्यमान श्रम विभाजन में स्पष्ट भेद किया है। श्रम विभाजन किसी भी समाज के सामाजिक-आर्थिक जीवन का अनिवार्य अंग है। किन्तु उन्होंने औद्योगिक समाजों में होने वाले श्रम विभाजन पर ही अधिक ध्यान दिया है।

दर्खाइम के अनुसार, औद्योगिक समाजों में श्रम विभाजन भौतिक तथा नैतिक सघनताओं में वृद्धि का परिणाम है। जैसा कि हमने पहले पढ़ा वह विशेषज्ञता अथवा श्रम विभाजन को एक साधन मानता है जिसके जरिए स्पर्धा या अस्तित्व के संघर्ष को कम किया जा सकता है। विशेषज्ञता ऐसा गुण है जिससे बड़ी संख्या में लोगों के लिए बिना लड़ाई-झगड़े के मिल-जुलकर रहना संभव होता है क्योंकि समाज में प्रत्येक व्यक्ति की अपनी विशिष्ट भूमिका रहती है। इससे सामूहिकता और सह-अस्तित्व का विकास होता है।

मार्क्स भी उत्पादन में श्रम विभाजन को औद्योगिक समाज की एक विशेषता मानता है, परन्तु उसकी मान्यता दर्खाइम की मान्यता से भिन्न है। वह इसे सहयोग एंव सह-अस्तित्व का साधन नहीं मानता है। इसके विपरित, उसकी धारणा यह है कि श्रम विभाजन श्रमिकों पर थोपी गई एक प्रक्रिया है ताकि लाभ पूँजीपति के हिस्से में जाए। वह इस प्रक्रिया को निजी सम्पत्ति के अस्तित्व के साथ जोड़ता है। इससे उत्पादन के साधनों पर पूँजीपति का नियंत्रण रहता है। इसीलिए पूँजीपति ऐसी प्रक्रिया तैयार करते हैं। जिसमें उनकों अधिक से अधिक लाभ मिले। इस प्रकार श्रम विभाजन को श्रमिकों पर थोपा जाता है। मज़दूर वेतन के बदले अपनी श्रम-शक्ति बेचते हैं। उनमें एक जैसे उकता देने वाले तथा एक ही तरह के काम कराए जाते हैं। ताकि उत्पादकता बढ़ने के साथ-साथ पूँजीपति के लाभ में भी वृद्धि हो।

संक्षेप में, दर्खाइम की मान्यता है कि श्रम विभाजन के कारण इस तथ्य में निहित हैं कि औद्योगिक समाज को बनाए रखने के लिए व्यक्ति को सहयोग करने तथा विभिन्न प्रकार के काम करने की आवश्यकता है। मार्क्स के अनुसार श्रम विभाजन श्रमिकों पर थोपी गई प्रक्रिया हैं, जिसका उद्देश्य पूँजीपति का लाभ बढ़ाना है। दर्खाइम सहयोंग पर बल देता हैं, जबकि मार्क्स ने शोषण एंव संघर्ष पर ध्यान केंद्रित किया हैं।

9.5.2 श्रम विभाजन के परिणाम

आधुनिक औद्योगिक समाजों में श्रम विभाजन के कारणों के संबंध में दृष्टिकोण भिन्न होने के कारण श्रम विभाजन के परिणामों के मामले में भी दर्खाइम और मार्क्स के दृष्टिकोण में अंतर होना स्वाभाविक है।

जैसा कि पहले उल्लेख किया गया हैं, दर्खाइम श्रम विभाजन को ऐसी प्रक्रिया मानता हैं, जो लोगों में सहयोग एंव सह-अस्तित्व विकसित करने में सहायक हैं। हमने पहले ही पढ़ा है कि किसी प्रकार वह श्रम विभाजन को सामाजिक एकीकरण की शक्ति मानता है, जिससे एकात्मका को बढ़ावा मिलता है। ''सामान्य'' स्थिति में श्रम विभाजन से प्रत्येक व्यक्ति का अपनी विशेष भूमिका निभाते हुए सामाजिक एकात्मता में योगदान होता है। प्रत्येक व्यक्ति द्वारा अपने विशिष्ट क्षेत्र में रचनात्मक और नवोन्मुखता की अपनी शक्ति का विकास हो सकता है। साथ ही प्रत्येक व्यक्ति की समाज पर अधिकाधिक निर्भरता होगी और परस्पर पूरक कार्य किये जायेगे। इस प्रकार, सामाजिक बंधन अधिक पक्के तथा स्थायी होते जाते हैं।

दर्खाइम के अनुसार, श्रम का अपर्याप्त संगठन एंव असमानता पर आधारित मानक शून्य विभाजन श्रम विभाजन का व्याधिकीय अथवा असामान्य रूप है। इस प्रकार के रूप वास्तविक श्रम विभाजन के परिणाम नहीं हैं। ये समाज की अस्थिरता के परिणाम हैं। नए आर्थिक संबंधों के नियम और सिद्धांत अभी व्यवहार में नहीं आए हैं। आर्थिक क्षेत्र में बड़ी तीव्रता से परिवर्तन हो रहा है, किन्तु इसे सही दिशा देने वाले नए नियम-कानून अभी व्यवस्थित रूप में विकसित नहीं हुए हैं।

दूसरी ओर, मार्क्स की दृष्टि में श्रम विभाजन पूँजीपतियों द्वारा श्रमिकों पर थोपी गई एक प्रक्रिया है। जैसा कि हमने पहले भी पढ़ा हैं, इसके फलस्वरूप श्रमिक वर्ग का अमानवीकरण हो जाता है। अलगाववाद उभर जाता है। श्रमिक व्यक्ति की बजाय वस्तु के रूप में देखे जाते हैं। उनकी सृजनात्मकता छीन ली जाती है और अपनी ही उत्पादों के नियंत्रण से वे वंचित हो जाते हैं। उनका श्रम सामग्री का रूप ले लेता है। जिसे बाज़ार में खरीदा और बेचा जा सकता है। इस प्रकार वे स्वंय उत्पादक न रह सका उत्पादन प्रक्रिया का अंग मात्र

बन जाते हैं। उनके नियोजकों यानी मालिकों के लिए उनके व्यक्तित्तव और उनकी समस्याओं का कोई महत्व नहीं रहता। उन्हें काम करने की मशीन से अधिक कुछ नहीं समझा जाता। इस प्रकार उनका पूर्णतया अमानवीकरण हो जाता है। वे एक ऐसी व्यवस्था के अंग होते हैं। जिसके नियंत्रण से वे वंचित हैं, जिसके परिणामस्वरूप सभी स्तरों पर अलगाव महसूस करते हैं, अपने काम से लेकर साथियों और सामाजिक व्यवस्था तक से वे कट जाते हैं।

संक्षेप में, दर्खाइम की नज़र में श्रम विभाजन ऐसी प्रक्रिया हैं, जो सामाजिक सामंजस्य का आधार बन सकती हैं। मार्क्स के अनुसार, यह एक ऐसी प्रक्रिया है, जिससे श्रमिक का अमानवीकरण होता है और अलगाव बढ़ जाता है तथा उत्पादक का अपनी रचना से संबंध टूट जाता है। श्रमिकों को जिस व्यवस्था का स्वामी होना चाहिए, उसके ही वे गुलाम बन कर रह जाते हैं।

9.5.3 श्रम विभाजन से संबंधित समस्याओं के समाधान

जैसे कि हमने पढ़ा है दर्खाइम श्रम विभाजन को ऐसी प्रक्रिया मानता है जो सामान्य परिस्थितियों में समाजिक सामंजस्य का कारण बनती है। समाज में श्रम विभाजन के जो असामान्य रूप प्रचलित हो जाते हैं, उनको इस प्रकार सुधारा जाना चाहिए जिससें श्रम विभाजन सामाजिक एकीकरण की अपनी भूमिका निभा सके।

दर्खाइम का कहना है कि समाज में श्रमिकों को उनकी भूमिका के प्रति जागरूक बनाकर प्रतिमानहीनता की स्थिति को दूर किया जा सकता है। उनमें यह एहसास कराने से कि वे सामाजिक जीवन के अभिन्न अंग हैं, निरर्थक कार्य करने की उनकी कुंठा को दूर किया जा सकता है। तब यह निरर्थकता उनकी भूमिका के महत्व के प्रति चेतना का रूप ले लेगी। मार्क्स के अनुसार, पूँजीवाद ही वास्तव में मूल सामास्या है। श्रम विभाजन से अमानवीकरण, अलगाव और नियंत्रण के अभाव जैसी स्थितियां जन्म लेती है। इसका समाधान है क्रांति, जिसके माध्यम से उत्पादन के साधनों पर श्रमकों का फिर से नियंत्रण हो सकेगा। वे तब उत्पादन प्रक्रिया का विकास और संचालन इस ढंग से करेंगे कि अमानवीकरण और अलगाव जैसी समस्याएँ अतीत का विषय बन जाएँगी।

9.5.4 समाज के बारे में दर्खाइम का ''प्रकार्यात्मक'' मॉडल और मार्क्स का ''संघर्ष'' मॉडल

श्रम विभाजन के अध्ययन के आधार पर दर्खाइम ने समाज का प्रकार्यात्मक मॉडल विकसित किया। वह इसमें देखता है कि किस प्रकार सामाजिक संस्थाएं तथा प्रक्रियाएं समाज को बनाएं रखने में सहायक होती हैं। इसके बारे में आपने इसी खंड की इकाई 18 में पढ़ा है। दर्खाइम सामाजिक संतुलन के प्रश्न का स्पष्टीकरण देने का प्रयास करता है। हमें याद रखना चाहिए कि दर्खाइम के जीवन काल में समाज की व्यवस्था पर खतरे मंडरा रहे थे। इसलिए संभवतः उसका काम यह दिखाना था कि जो परिवर्तन हो रहे हैं उनसे समाज-व्यवस्था छिन्न-भिन्न नहीं होगी, बल्कि नए समाज में सामंजस्य लाने में सहायता मिलेगी। दर्खाइम श्रम विभाजन के आर्थिक पहलू मात्र को नहीं बल्कि उसके सामाजिक पहलू अर्थात् सामाजिक एकीकरण में उसके योगदान को भी महत्व देता है।

दूसरी और औद्योगीकरण की चुनौतियों के प्रति मार्क्स की प्रतिक्रिया एकदम भिन्न है। वह दर्खाइम की इस मान्यता से सहमत नहीं है कि समात मूलतः संतुलित स्थिति में है और समाजिक संस्थाओं और प्रक्रियाओं का अस्तित्व केवल इसलिए है कि वे समाज को एक

बनाए रखने में सहायक है। मार्क्स मानव इतिहास को वर्ग संघर्ष अथवा शोषण एंव शोषितों के बीच संघर्षों की श्रृंखला का इतिहास मानता है। पूँजीवाद मानव इतिहास का एक चरण हैं, जिसमें बुर्जुआ वर्ग तथा सर्वहारा वर्ग के बीच संघर्ष चल रहा है। पूँजीवाद के अंतर्गत जो उत्पादन प्रणाली विद्यमान हैं, वह श्रमिकों को शोषण करने के लिए तैयार की गई है। श्रमिकों और पूँजीपतियों के हित आपस में टकराते हैं। मार्क्स को विश्वास है कि सर्वहारा की क्रांति से पुरानी व्यवस्था का पतन होगा और नई प्रणाली का सूत्रपात होगा। समाज के प्रति मार्क्स के दृष्टिकोण में विरोध, संघर्ष और परिवर्तन का प्रमुख स्थान है। इस अर्थ में मार्क्स ने समाज का संघर्ष मॉडल प्रस्तुत किया।

संक्षेप में, दर्खाइम की दृष्टि में समाज एक ऐसी व्यवस्था हैं, जो अपनी विभिन्न संस्थाओं के योगदान से एकजुट बनी रहती है। मार्क्स इतिहास को ''सम्पन्न'' और ''सर्वहारा'' वर्गों के बीच संघर्षों की श्रृंखला मानता हैं, जिसमें टकराव और परिवर्तन होता है। दोनों विद्वानों के दृष्टिकोण में मुख्य यही अंतर है।

आइए, इस बिंदु पर इकाई की मुख्य चर्चाए समाप्त होने के समय बोध प्रश्न 4 को पूरा कर लें।

बोध प्रश्न 4

i) निम्नलिखित कथनों की क्रम संख्याओं को निम्नलिखित तालिका के अ तथा ब में उपयुक्त शीर्षक के अंतर्गत लिखिए।

1) श्रम विभाजन शोषण पर आधारित है।
2) श्रम विभाजन से सहयोग पैदा होता है।
3) श्रम विभाजन सामाजिक एकता में सहायक है।
4) श्रम विभाजन श्रमिक को सब प्रकार के नियंत्रण से वंचित कर देता है।
5) श्रम विभाजन आधुनिक पूँजीवाद की विशेषता है।
6) औद्योगिक जगत की समस्याएं श्रम विभाजन का असामान्य रूप हैं।
7) पूँजीवाद स्वंय ही औद्योगिक जगत की समस्या है
8) असमानता पर आधारित श्रम विभाजन समाज में समस्याएँ पैदा करता हैं।

अ	ब
दर्खाइम का दृष्टिकोण	**मार्क्स का दृष्टिकोण**
.....	.....
.....	.....
.....	.....
.....	.....
.....	.....
.....	.....
.....	.....
.....	.....
.....	.....

ii) श्रम विभाजन विषय पर विचार के संदर्भ में दर्खाइम के ''प्रकार्यात्मक मॉडल'' और मार्क्स के ''संघर्ष मॉडल'' की तुलना कीजिए। अपना उत्तर छह पंक्तियों में लिखिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

9.6 सारांश

हमने सबसे पहले यह पढ़ा कि ''श्रम विभाजन'' शब्द से क्या तात्पर्य है। इसके पश्चात् हमने श्रम विभाजन पर एमिल दर्खाइम के विचारों का अध्ययन किया। उसने ये विचार अपनी पुस्तक *डिवीज़न ऑफ़ लेबर इन सोसाइटी* में व्यक्त किए। इस पुस्तक में व्यक्त मुख्य बातों को निम्नलिखित शीर्षकों में वर्गीकृत किया गया।

i) श्रम विभाजन के कार्य

ii) श्रम विभाजन के कारण

iii) असामान्य रूप

इसके पश्चात् श्रम विभाजन पर कार्ल मार्क्स के विचारों की व्याख्या की गई हमने सामाजिक श्रम विभाजन तथा औद्योगिक श्रम विभाजन के बीच मार्क्स द्वारा बताए गए अंतर को समझा। हमने औद्योगिक श्रम विभाजन के विभिन्न पक्षों का भी अध्ययन किया, जा इस प्रकार है।

i) लाभ पूँजीपति के हिस्से में जाता है।

ii) श्रमिकों का अपने उत्पादों पर कोई नियंत्रण नहीं रहता।

iii) श्रमिक वर्ग का अमानवीकरण होता है।

iv) सभी स्तरों पर अलगाव महसूस किया जाता है।

इसके उपरांत हमने इन समस्याओं के लिए मार्क्स के सामाधान अर्थात क्रांति के बारे में पढ़ा जिससे साम्यवादी व्यवस्था की स्थापना होगी, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को अपनी सष्जनात्मक क्षमता का विकास करने का अवसर मिलेगा।

अंत में हमने निम्नलिखित शीर्षकों के अंतर्गत दर्खाइम और मार्क्स के विचारों की तुलना की।

i) श्रम विभाजन के कारण

ii) श्रम विभाजन के परिणाम

iii) श्रम विभाजन से संबंधित समस्याओं का समाधान

iv) समाज के बारे में दर्खाइम का ''प्रकार्यात्मक'' मॉडल और मार्क्स का ''सघर्ष'' मॉडल।

9.7 संदर्भ

आरों, रेमों 1970. *मेन करंट्स इन सोशियोलॉजिकल थॉट.* भाग 1 और 2 (मार्क्स और दर्खाइम से संबंधित भाग देखिए), पेंगुइन बुक्सः लंदन

बॉटोमौर, टॉम (संपा.) 1983. *डिक्शनरी ऑफ़ मार्क्ससिस्ट थॉट*. ब्लैकवैलः ऑक्सफ़ोर्ड

गिड्डनस, एन्थनी 1978. *दर्खाइम.* हार्वेस्टर प्रेसः हैसॉक्स

9.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

i) क) लघु, व्यापक

ख) श्रम विभाजन

ग) एडम स्मिथ

ii) क) ग़लत

ख) ग़लत

ग) सही

बोध प्रश्न 2

i) क) ग़लत

ख) ग़लत

ग) ग़लत

घ) ग़लत

iii) क) यांत्रिक एकात्मता समरूपता पर आधारित है। सायविक एकात्मता भिन्नताओं तथा भिन्नताओं की पूरकता पर आधारित है। इस प्रकार, व्यक्ति नवोन्मुखी भी हो सकते हैं और साथ ही दूसरे व्यक्तियों तथा समाज पर निर्भर भी। इस तरह, व्यक्तिवाद और सामाजिक सांमजस्य एक-साथ रह सकते हैं। अतः दर्खाइम ने सावयविक एकात्मता को उच्च स्तर की एकात्मता माना हैं।

ख) भौतिक तथा नैतिक सघनता समाज के लोगों को एक-दूसरे के निकट संपर्क में लाती हैं। अस्तित्व के लिए और कम मात्रा में उपलब्ध साधनों के लिए संघर्ष छिड़ सकता हैं। सह-अस्तित्व के लिए व्यक्ति अलग-अलग क्षेत्रों में विशेषज्ञता हासिल करते हैं और इस प्रकार श्रम का विभाजन होता है। इस प्रकार, दर्खाइम के अनुसार भौतिक और नैतिक संघनता के फलस्वरूप श्रम का विभाजन होता हैं।

ग) दर्खाइम के अनुसार, प्रतिमानहिनता (दवउपम) असामान्य रूप हैं। यह वह स्थिति हैं, जिसमें लगता है कि सभी नियम कानून टूट चुके हैं। उदाहरण के लिए व्यक्तियों को काम करना पड़ता है और उत्पादन जारी रखना होता हैं, परन्तु कोई नए नियम लागू नहीं किए जाते। उन्हें समझ नहीं आता कि उनके काम का क्या अर्थ अथवा उद्देश्य हैं।

बोध प्रश्न 3

i) क) सामाजिक श्रम विभाजन समाज में उपयोगी श्रम के सभी रूपों का बंटवारा करने की एक जटिल प्रक्रिया है। कुछ लोग अनाज पैदा करते हैं तो दूसरे हस्तशिल्प की वस्तुएं बनाते है। इसमें वस्तुओं के आदान-प्रदान को बढ़ावा मिलता है और सामाजिक तथा आर्थिक जीवन के संचालन के लिए यह अनिवार्य है।

ख) निर्माण में श्रम विभाजन से श्रमिक उत्पादन प्रक्रिया का छोटा सा हिस्सा बन जाते हैं। उत्पादों से श्रमिक का कोई सरोकार नहीं रहता। वह उसे बेच नहीं सकते और प्रायः उसे खरीद पाने की स्थिति में भी नहीं होते। वे वस्तुओं के उत्पादन की प्रक्रिया के स्वामी बनने के बजाय गुलाम बन जाते हैं।

i) क) ii) ख) i) ग) iii)

बोध प्रश्न 4

i)

दर्खाइम का दृष्टिकोण	मार्क्स का दृष्टिकोण
(2)	(1)
(3)	(4)
(6)	(5)
(8)	(7)

ii) एमिल दर्खाइम के समाज के ''प्रकार्यात्मक'' मॉडल से हमारा अभिप्राय उस विधि से हैं, जिसमें उसने सामाजिक सांमजस्य बनाए रखने में सामाजिक संस्थाओं के योगदान का अध्ययन किया। इस मॉडल के अनुरूप उसने श्रम विभाजन का केवल आर्थिक ही नहीं बल्कि सामाजिक प्रक्रिया के रूप में अध्ययन किया। उसने यह दिखाने का भी प्रयास किया कि किस तरह यह प्रक्रिया सामाजिक सामंजस्य में योग देती हैं।

दूसरी ओर, कार्ल मार्क्स ने समाज का अध्ययन विरोध, संघर्ष और परिवर्तन के संदर्भ में किया। मानव इतिहास में एक समूह दूसरे समूह के शोषण का शिकार होता रहा है। श्रम विभाजन एक ऐसी प्रक्रिया हैं, जिसके ज़रिए पूँजीपति श्रमिकों का शोषण करते हैं। यह दृष्टिकोण मार्क्स के ''संघर्ष'' मॉडल को व्यक्त करता हैं।

इकाई 10 धर्मः दर्खाइम और वेबर*

संरचना

10.0 उद्देश्य

10.1 प्रस्तावना

10.2 धर्म के समाजशास्त्र में एमिल दर्खाइम का योगदान

10.2.1 धर्म की व्याख्या – मान्यताएँ और अनुष्ठान

10.2.2 टोटमवाद का अध्ययन

10.2.3 धर्म और विज्ञान

10.3 मैक्स वेबर का योगदान

10.3.1 भारतीय धर्म

10.3.2 चीनी धर्म

10.3.3 प्राचीन यहूदी धर्म

10.4 दर्खाइम और वेबरः तुलना

10.4.1 विश्लेषण की इकाइयाँ

10.4.2 धर्म की भूमिका

10.4.3 देवता, भूत-प्रेत और पैगम्बर

10.4.4 धर्म और विज्ञान

10.5 सारांश

10.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

10.6 संदर्भ

10.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद, आपके लिए संभव होगा :

- धर्म से संबधित एमिल दर्खाइम के विचारों का विवेचन करना;
- धर्म के समाजशास्त्र में मैक्स वेबर के योगदान पर चर्चा करना; तथा
- इन दोनों चिंतकों के दृष्टिकोण में अंतर बताना।

10.1 प्रस्तावना

जैसा कि आपको मालूम है, धर्म को मानव समाज का अत्यंत महत्वपूर्ण अंग माना जाता है। धर्म का संबध मनुष्यों की मान्यताओं और अनुष्ठानों की उस प्रणाली से है जो उसके क्रियाकलापों और विचारधाराओं को मार्गदर्शित करती है। धर्म वह माध्यम है जिसके द्वारा लोग एकजुट होते हैं, जिससे उनमें एकता और आत्मीयता की भावना पैदा होती है। कभी-कभी इसका परिणाम बिल्कुल विपरीत होता है जब कोई एक धार्मिक समूह दूसरे समूह के प्रति विरोध प्रकट करने के उद्देश्य से काम करता है। धर्म वह माध्यम है जिसके द्वारा लोग जीवन की समस्याओं और संकटों के समाधान ढूँढते हैं। धर्म एक सामाजिक सत्य है और

*यह इकाई ESO-13, इकाई 19 से अनुग्रहित एवं संपादित है।

समाज की अन्य व्यवस्थाओं से उसका गहरा संबध है। धर्म, समाजशस्त्रियों और नृशास्त्रियों के लिये हमेशा से रोचक विषय रहा है। इस संबध में दर्खाइम और बेवम के योगदान अत्यंत महव्वपूर्ण है।

इस इकाई में आइए हम देखें कि किस प्रकार दर्खाइम और वेबर ने अपनी समाजशास्त्रीय पद्धतियों का प्रयोग धर्म के अध्ययन द्वारा किया।

भाग 10.2 में धर्म के समाजशास्त्र में दर्खाइम के योगदान को प्रस्तुत किया जायेगा। उसकी महत्वपूर्ण कृति द एलिमेंटरी फार्म्स ऑफ रिलीजस लाइफ (1912) में उसकी प्रमुख संभावनाओं पर चर्चा की जायेगी। भाग 10.3 में धर्म संबंधित वेबर की प्रमुख अवधारणाओं पर विचार किया जायेगा। अंतिम भाग 10.4 में इन चिंतको के दृष्टिकोण में अंतर पर नजर डाली जायेगी।

10.2 धर्म के समाजशास्त्र में एमिल दर्खाइम का योगदान

द एलिमेंटरी फार्म्स ऑफ रिलीजस लाइफ दर्खाइम की महत्वपूर्ण कृति है। इस की प्रमुख स्थापनाओं पर आज भी विद्धानों और विद्यार्थियों के बीच वाद विवाद होते है।

इससे पहले कि इस कृति के प्रमुख विचारों पर चर्चा करें, आइए, एक महत्वपूर्ण प्रश्न की ओर नजर डालें। दर्खाइम ने विश्व के विकसित धर्मो के अध्ययन (जैसे कि हिन्दू धर्म, इस्लाम, ईसाई धर्म) की अपेक्षा धर्म के सरलतम रूप पर ही ध्यान क्यों केन्द्रित किया?

आइए एक उदाहरण द्वारा इस प्रश्न का उत्तर दें।

यदि आपको साइकिल चलाना आता है तो मोटर साईकिल चलाने में आपको ज्यादा दिक्कत नहीं होगी। इसी तरह यदि आप धर्म के सरल रूप समझें, तो जटिल, सुव्यवस्थित धर्मों को समझने में सहायता मिलेगी। धर्म का सरलतम रूप उन समाजों में पाया जा सकता है जिनकी सामाजिक व्यवस्था उतनी ही सरल हो, यानी आदिम जनजातीय या आदिवासी समाज। दर्खाइम का उद्‌श्य ''आदिवासी'' (aborigines) समाज में आदिवासी धर्म के अध्ययन द्वारा जटिल विचार प्रणालियों और मान्यताओं पर प्रकाश डालना था।

अगले उपभागों में इसी प्रयास का विवेचन किया जायेगा। सबसे पहले आइए देखें कि दर्खाइम किस प्रकार धर्म की व्याख्या करता है।

10.2.1 धर्म की व्याख्या–मान्यताएँ और अनुष्ठान

दर्खाइम का कहना है कि धर्म की व्याख्या करने से पहले हमें अपनी पूर्वाकल्पनाओं और पूर्वाग्रहों को दूर करना होगा। वह इस मान्यता को नकारता है कि देवताओं और भूत-प्रेतों जैसी रहस्यम और अलौकिक बातों मात्र से धर्म संबधित है। उसके अनुसार धर्म न सिर्फ असाधारण बातों से बल्कि आम जीवन की सामान्य घटनाओं से संबद्ध है। सूर्योदय और सूर्यास्त, ऋतुओ का चक्र, पेड़-पोधों, फसलो का उगना-बढ़ना, नये जीवों का जन्म सब धार्मिक विचारों के विषय है।

धर्मो की व्याख्या करने के लिये विभिन्न धार्मिक प्रणालियों का अध्ययन जरूरी है, जिससे उनके समान तत्वों को पहचाना जा सके। दर्खाइम (1912:38) का कहना है कि ''धर्म की परिभाषा उन समान गुणों के संदर्भ में ही की जा सकती है जो हर धर्म में पाये जाते हैं।''

दर्खाइम के अनुसार सभी धर्मो में दो मूल तत्व होते है धार्मिक विश्वास और धार्मिक अनुष्ठान। ये विश्वास सामूहिक प्रतिनिधान (collective representations) हैं (जिनका

विस्तृत अध्ययन खंड 3 में किया जा चुका है), और धार्मिक अनुष्ठान समाज द्वारा स्थापित वे क्रियाएँ हैं जो इन विश्वासों से प्रभावित होती हैं।

जैसा कि आपने पहले पढ़ा है, धार्मिक विश्वास पवित्र और लौकिक इस विभाजन पर आधारित है। पवित्र और लौकिक क्षेत्र एक दूसरे के विपरीत हैं और इस आपसी भेद को धार्मिक अनुष्ठानों और कर्मकांडो द्वारा नियंत्रित किया जाता है। पवित्र अथवा दिव्य क्षेत्र वह है जिसे उच्च स्तर दिया जाता है और जिसके प्रति सम्मान अथवा भय की भावना पैदा होती है। दिव्य क्षेत्र की लौकिक क्षेत्र से अधिक महत्व और प्रतिष्ठा दी जाती है। उसके अस्तिव और शक्ति को सामाजिक नियमों द्वारा सुरक्षित किया जाता है। दूसरी और लौकिक क्षेत्र के अन्तर्गत आम दैनिक जीवन के सामान्य पहलू शामिल हैं। दर्खाइम के अनुसार दिव्य और लौकिक क्षेत्रों को एक दूसरे से अलग रखना आवश्यक माना जाता है, क्योंकि वे एक दूसरे से मूल रूप से भिन्न, विपरीत और विरोधी हैं।

आइए, इस बात को उदाहरण द्वारा स्पष्ट करें। मंदिर में जूते पहनकर जाना मना क्यों है,? जूते या चप्पल आम जीवन में इस्तेमाल किये जाते हैं, अतः वे लौकिक क्षेत्र से संबद्ध है। किन्तु मन्दिर को दिव्य, शुद्ध स्थल माना जाता है। जूतों की गंदगी से मंदिर को सुरक्षित रखना आवश्यक हो जाता है। इस प्रकार, दिव्य और लौकिक क्षेत्रों को अलग रखा जाता है।

दर्खाइम के अनुसार धार्मिक विश्वास और अनुष्ठानों को एकीकरण धर्म का स्वरूप लेता है। विश्वास से उसका तात्पर्य है विभिन्न नियम, नैतिक विचार, शिक्षा, और मिथक। ये सब वे सामूहिक प्रतिनिधान है जो व्यक्ति के बाहर होते हुए भी उसे धार्मिक व्यवस्था से एकीकृत करते है। विश्वासों के माध्यम से व्यक्ति दिव्य क्षेत्र और उसके साथ अपना संबंध समझ सकते है, जिसके अनुरूप वह अपना जीवन बिता सकते हैं।

विश्वासों पर आधारित धार्मिक अनुष्ठान वे नियम है जो दिव्य क्षेत्र से संबधित व्यक्तिगत व्यवहार का मार्ग दर्शन करते हैं। धार्मिक अनुष्ठान सकारात्मक होते हैं (जिससे व्यक्ति को दिव्य क्षेत्र के नजदीक लाया जाता है, जैसे कि हवन या यज्ञ) और नकारात्मक भी (इनमें दिव्य और लौकिक क्षेत्रों को एक दूसरे से दूर रखा जाता है)। उदाहरण के तौर पर शुद्धिकरण, उपवास, तपस्या आदि धार्मिक अनुष्ठान विश्वासों को और अधिक तीव्र या शक्तिशाली बनाते हैं। व्यक्तियों को एक दूसरे के करीब लाकर उनके सामजिक स्वभावों को सशक्त किया जाता है। धार्मिक अनुष्ठान सामूहिक चेतना को अभिव्यक्त करते हैं। जैसा कि आपने पढ़ा है, सामूहिक चेतना का अर्थ है कि समान मूल्य, विश्वास और विचार जो सामजिक एकात्मता को संभव बनाते हैं (देखिए गिडन्स 1974:84-89)

धर्म की व्याख्या विश्वासों और अनुष्ठानों की शब्दावली में करने से एक समस्या सामने आती है, क्योंकि इसके अंतर्गत जादू-टोना भी शामिल हो जाता है। क्या धर्म और जादू-टोना में कोई अंतर नही? नृशास्त्री रॉबर्टसन् स्मिथ मामला है जो व्यक्तिगत स्तर पर किया जाता है। उदाहरण के लिये यदि जादू में विश्वास करने वाला अपने पड़ोसी से ज्यादा सफल होना चाहे तो उसे जादू-टोना करवा कर पड़ोसी पर विपत्ति लाने का प्रयास करना होगा। ओक्षा (magician) को पैसा देकर तंत्र-मंत्र के द्वारा जादू में विश्वास करने वाले के लिए अपने पड़ोसी की फसल नष्ट करवाना संभव है, या उसकी गाय-भैंसे मरवाना संभव है। जादू-टोने में ओझा और ग्राहक के बीच संबंध निजी स्वार्थ से प्रेरित होता है। यह केवल व्यक्तिगत इच्छाओं के अनुरूप प्रकृति को प्रभावित करने का एक प्रयास है।

दूसरी ओर धर्म का सार्वजनिक और सामाजिक रूप है। भक्तों के बीच सामाजिक बंधन होते हैं, जो उन्हें समान जीवन बिताने वाले एक समूह के रूप में एकीकृत करते हैं। इन पक्षों

पर ध्यान देते हुए दर्खाइम ने धर्म की व्याख्या करते हुए कहा कि पवित्र चीजों के सबंधित विश्वासों और अनुष्ठानों की एकीकृत व्यवस्था को धर्म कहते हैं और इन विश्वासों और अनुष्ठानों को मानने वाले अनुयायी एक नैतिक समूह में एकीकृत होते हैं।

आइये अब हम देखें कि किस प्रकार आस्ट्रेलिया के आदिवासी समूह में प्रचलित टोटमवाद का अध्ययन कर दर्खाइम ने धर्म के सरलतम रूप को समझने का प्रयास किया। लेकिन इससे पहले, बोध प्रश्न 1 के उत्तर दीजिए।

बोध प्रश्न 1

1) निम्नलिखित वाक्यों को रिक्त स्थानों की पूर्ति द्वारा पूरा कीजिए।

   क) दर्खाइम ने धर्म के सरलतम रूप का अध्ययन किया क्योंकि

   .....

   .....

   .....

   ख) दर्खाइम के अनुसार प्रत्येक धर्म में पाए जाने वाले समान तत्व

   .....

   .....

   .....

   ग) लौकिक क्षेत्र ..... से संबद्ध है।

ii) दर्खाइम धर्म और जादू-टोने के बीच किस प्रकार भेद करता है? तीन पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

.....

.....

.....

.....

10.2.2 टोटमवाद का अध्ययन

जैसा कि पहले स्पष्ट किया गया है, दर्खाइम का यह मानना था कि जटिल धर्मो को समझने के लिये सरलतम धर्मों को समझना आवश्यक है। उसके अनुसार टोटमवाद धर्म का सबसे सरल रूप है। मध्य आस्ट्रेलिया भरपूर मात्रा में उपलब्ध थीं। समाजशास्त्री और नृशास्त्री इनकी सामजिक व्यवस्था को सरलतम मानते थे।

यह धर्म उन समाजों में पाया जाता है जिनमें सामाजिक व्यवस्था के आधार कुल (clan) हैं। कुल के सदस्य मानते है कि वे एक ही पूर्वज के वंशज है। यह पूर्वज या तो कोई या वनस्पति हो सकता है अथवा कोई वस्तु। प्रतीक के रूप में इस पूर्वज को टोटम-वस्तु कहते हैं। इसी वस्तु से कुल अपना नाम और पहचान प्राप्त करता है। टोटम नाम मात्र नही, बल्कि एक चिन्ह है जो कि अक्सर उस कुल की विभिन्न वस्तुओं पर यहाँ तक कि लोगों के शरीर पर अंकित रहता है। इससे लौकिक वस्तुओं को विशेष महत्व मिलता है। वे पवित्र बन जाती हैं। टोटम वस्तु के संबंध में अनेक प्रतिबंध होते हैं। उसकी हत्या करना या उसे खाना मना है। उसे सम्मान का दर्जा दिया जाता है। कुल से संबंधित हर वस्तु टोटम से संबद्ध होती

है और टोटम का अंग मानी जाती है। खून का रिश्ता न होते हुए भी कुल के सदस्यों को एक ही वंश का माना जाता है, क्योंकि उनका नाम, और चिन्ह एक है। परिणामस्वरूप कुल से बाहर विवाह करना एक महत्वपूर्ण नियम होता है। इस प्रकार इन सरल समाजों में धर्म और सामाजिक व्यवस्था पूरी तरह से अंतर्संबंधित है।

टोटम वस्तु और उससे संबधित अन्य वस्तुओं को पवित्र क्यों माना जाता है? दर्खाइम के अनुसार टोटम-प्राणी या वनस्पति को वास्तव में पूजा नही जाता है बल्कि एक ऐसी अमूर्त अदृश्य शक्ति की पूजा होती है जो हर भौतिक वस्तु में छिपी रहती है। इस शक्ति को अनेक नाम दिये गये है, जैसे कि समोआ में ''माना'', मेलननीशिया में ''वाकान'' और कु उत्तर अमरीकी जनजातियों में ''ओरेंडा''। टोटम-वस्तु उस टोटम सिद्धांत का प्रतीक मात्र है जो कि स्वयं कुल ही है। कुल को अपना अस्तिव प्रदान किया जाता है। टोटम वस्तु द्वारा उसे मूर्त रूप दिया जाता है। दर्खाइम के अनुसार ''ईश्वर'' की परिकल्पना समाज के दैवीकरण से उत्पन्न होती है। दूसरे शब्दों में ''ईश्वर''की परिकल्पना द्वारा समाज का नया रूप दिया जाता है। समाज को क्यों पूजा जाता है? दर्खाइम का कहना है कि समाज व्यक्ति की अपेक्षा हर क्षेत्र में अधिक शक्तिशाली है। उसका स्वतंत्र अस्तिव है और उसकी शक्ति के प्रति भय की भावना पैदा होती है। अतः उसकी सत्ता सम्मानीय होती है। उदाहरण के लिये जब युद्ध में किसी युवा ने राष्ट्रीय ध्वज को ऊँचा रखने के लिये अपनी जान न्यौछावन की तो कहा जाएगा कि उसने ध्वज के लिये नही बल्कि अपने राष्ट्र के लिये अपनी जान न्यौछावन की। ध्वज राष्ट्र का चिन्ह मात्र है।

समाज व्यक्तिगत चेतना द्वारा ही अभिव्यक्त होता है। समाज हमसे व्याग और समर्पण के आग्रह द्वारा हमारे अंदर की पवित्रता की भावना को बढ़ावा देता है। धार्मिक समारोहों और त्यौहारों के दौरान यह बात स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। कुल के सारे सदस्य धार्मिक अनुष्ठानों में भाग लेते हैं। सामूहिक उत्तेजना और उत्साह की भावना पैदा होती है जिनसे सामाजिक बंधन और अधिक मजबूत बनते हैं और सामाजिक एकात्मकता को बढ़ावा मिलता है।

संक्षेप में कुल के सदस्य अपने समान पूर्वज को पूजते हैं। यह टोटम वस्तु का रूप लेता है, जिससे कुल को अपना नाम और विशिष्ट पहचान मिलती है। लेकिन दर्खाइम का मानना है कि वास्तव में स्वयं कुल की ही पूजा टोटम वस्तु के माध्यम से होती है। धर्म का वास्तविक अर्थ है समाज को दिव्य रूप देकर उसकी पूजा करना, क्योंकि उसे व्यक्तियों से अधिक शक्तिशाली माना जाता है व्यक्ति पर समाज भौतिक और नैतिक प्रतिबंध लगाता है। समाज को पूजने से उसके सदस्यों में एकात्मकता और उत्साह की भावना को बढ़ावा मिलता है जिससे वे सामूहिक जीवन और उसकी सामूहिक अभिव्यक्ति में भाग ले सकते है।

आदिम अथवा सरलतम धर्मों पर दर्खाइम ने अनेक रोचक और महत्वपूर्ण विचार प्रस्तुत किये हैं। उसने इन विचारों का जटिल विचार प्रणालियों को समझने में किस प्रकार उपयोग किया? जैसा कि आपको मालूम है, आधुनिक युग में विज्ञान का तीव्र गति से विकास हुआ है। क्या धर्म और विज्ञान एक दूसरे से बिल्कुल विपरीत है? अगले उप-भाग में आइए देखें कि इस संबंध में दर्खाइम का मत क्या है।

सोचिए और करिए 1

भारत में प्रचलित किन्हीं दो धर्मों के पाँच विश्वासों एवं अनुष्ठानों की सूची बनाइए। अपनी सूची की तुलना अपने अध्ययन केंद्र के अन्य विद्यार्थियों की सूची से कीजिए।

10.2.3 धर्म और विज्ञान

दर्खाइम के अनुसार धार्मिक विचारधाणाओं से ही वैज्ञानिक विचारधारा की उत्पत्ति हुई। धर्म और विज्ञान दोनों प्रकृति, मानव जाति और मानव समाज से संबधित हैं। वस्तुओं का वर्गीकरण उनकी व्याख्या और उनके बीच पारस्पारिक संबंधों को समझने का प्रयास धर्म और विज्ञान दोनों द्वारा किया जाता है।

विज्ञान वास्तव में धार्मिक विचारों का अधिक शुद्ध और विकसित रूप है। बल और शक्ति जैसी वैज्ञानिक परिकल्पानाँ मूलतः धार्मिक परिकल्पनाएँ हैं। दर्खाइम का विश्वास है कि ऐसा समय आयेगा। जब धार्मिक विचारों का स्थान विज्ञान ले लेगा। वह इस बात की ओर ध्यान आकृष्ट करता है कि समाज-विज्ञानों में धर्म का वैज्ञानिक अध्ययन किया जा रहा है।

धार्मिक विचार और वैज्ञानिक विचार दोनों सामूहिक प्रतिनिधान है, अतः उनके बीच संघर्ष होना असंभव है। धर्म और विज्ञान दोनों ही सार्वभौमिक सिद्धांत की खोज करने के दो प्रकार से प्रयास हैं। उनका उद्देश्य मानव-जाति को व्यक्तिगत स्वभाव की सीमाओं से बाहर लाकर एक ऐसी जीवन पद्धति को प्रोत्साहित करना है जो एक साथ व्यक्तिवादी और सामूहिक हो। संपूर्ण मानव कहलाने के लिये व्यक्ति को समाज की आवश्यकता है। व्यक्ति और समाज को एक बनाने में धर्म और विज्ञान दोनों सहायक होते हैं।

हमने देखा कि किस प्रकार दर्खाइम धर्म का अध्ययन सामूहिक एकात्मकता के संदर्भ में करता है। सामूहिक एकात्मकता व्यक्तियों में एकता उत्पन्न कर तथा समाज की पूजा करवा कर और अधिक मजबूत और गहरी बन जाती है।

दर्खाइम के विचारों ने विशेष कर इंग्लैड और फ्रांस के समाजशास्त्रियों और नृशास्त्रियों को प्रभावित किया। उसका भाँजा मार्सेल मॉस उन महत्वपूर्ण नृशास्त्रियों में से था जिन्होंने दर्खाइम की पद्धति को अपनाया। उस के विषय में आपको कोष्ठक 10.1 में जानकारी दी गई है।

कोष्ठक 10.1: मार्सेल मॉस

मार्सेल मॉस (1872.1950) एमिल दर्खाइम का भांजा था लोरै (फ्रांस) के एक आत्मीय, धर्मनिष्ठ यहूदी परिवार में उसका जन्म हुआ। किन्तु मॉस ने यहूदी धर्म को नकार दिया। मॉस का अपने मामा के प्रति बहुत लगाव था और उसी के मार्गदर्शन में उसने बोर्दो में दर्शन-शास्त्र का अध्ययन प्रारंभ किया। दर्खाइम ने मार्सेल को पढ़ाई में बहुत सहायता की। इनके इस आपसी लगाव से एक ऐसा बौद्धिक संबंध पैदा हुआ जिसके परिणामस्वरूप फार्म्स ऑफ प्रिमिटिव क्लासिफकेशन (दर्खाइम और मॉस, 1903) और ऐसी अन्य कृतियां लिखी गई।''ऐनी सोश्योलोजीक'' नामक दर्खाइम द्वारा स्थापित पत्रिका में मॉस संपादक के रूप में काम करने लगा। इसी दौरान अन्य मेधावी नौजवान विद्वानों से उसका परिचय हुआ, जिनके साथ वह काम करने लगा। हयूबैर्ट, फॉसोने, बीशा के साथ उसने धर्म, जादू-टोना, यज्ञ, बलि, प्रार्थना, स्वंय की परिकल्पना इत्यादि विषयों पर महत्वपूर्ण लेख प्रकाशित किये।

सैक्रिफाइस : इट्स नेचर एंड फंकशन (हयूबर्ट और मॉस 1899) में यज्ञ का अध्ययन किया गया, जिसे पवित्र और लौकिक क्षेत्रों के बीच संपर्क के रूप में देखा गया। जिस वस्तु की यज्ञ में अहुति दी जाती है, उसका विनाश हो जाता है।

द गिफ्ट (1925), मॉस की सबसे महत्वपूर्ण कृति मानी जाती है। प्राचीन समाजों में पायी जाने वाली भेंटों की लेन-देन की प्रणालियों पर मॉस ने ध्यान केन्द्रित किया। उसकी मुख्य परिकल्पनाएं इस प्रकार थीः

i) लेन-देन, जिसमें लेना, देना और भरपाई शामिल है। ये प्रत्येक समाज में पाये जाते है,

ii) भेंटों का आदान-प्रदान सभी सामाजिक बंधनों को मजबूत करता है, चाहे वे सहकारी, प्रतिस्पर्धात्मक या संघर्षमय हों। मॉस ने सामजिक व्यवस्था और लेन-देन के स्वरूप के बीच अंतर्संबध दिखाने का प्रयास किया।

दोनो महा-युद्ध मॉस के जीवन में अनेक विपत्तियां लाये। पहले महा-युद्ध में उसने अनेक मित्र और सहकर्मी खो दिये। उसके प्रिय मामा दर्खाइम का पुत्र आंद्रे युद्ध में शहीद हो गया। यह सदमा दर्खाइम बर्दाशत न कर सका और जल्द ही वह चल बसा। दूसरे महायुद्ध में फ्रांस ने जर्मन सत्ता के दौरान मित्रों-सहकर्मियों को खोने का अनुभव उसे दोबारा झेलना पड़ा जिससे उसके मानसिक संतुलन पर बुरा असर हुआ। उसकी अनेक कृतियाँ अधूरी ही रह गई। वह अपने बहुस्तरीय व्यापक लेखों को इकट्ठा नही कर सका। 1950 में मॉस का देहान्त हो गया। आगे वाली पीढ़ी के लिये उसने एक महत्वपूर्ण बौद्धिक विरासत छोड़ दी। विशेष तौर पर ब्रिटिश और फ्रांसीसी समाजशास्त्री और नृशास्त्री उसके विचारों से अत्यंत प्रभावित हुए।

बोध प्रश्न 2

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दो पंक्तियों में लिखिए।

i) टोटम पर आधारित कुल के सदस्य दूसरे कुल में ही विवाह क्यों करते हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

ii) दर्खाइम के अनुसार समाज को क्यों पूजा जाता है?

.....

.....

.....

.....

.....

iii) दर्खाइम का कहना है कि धर्म और विज्ञान के बीच संघर्ष असंभव है। क्यों?

.....

.....

.....

.....

.....

10.3 मैक्स बेबर का योगदान

मैक्स वेबर द्वारा प्रस्तुत धर्म के समाजशास्त्रीय अध्ययन का आधार है व्यक्तियों को कर्ता के रूप में देखना, और कर्ता द्वारा अपने परिवेश संबधित व्यक्तिपरक अर्थ को समझना। वेबर अपना अध्ययन धार्मिक नीतियों या मान्यताओं पर केन्द्रित करता है, और अन्य सामाजिक उप-व्यवस्थाओं (जैसे कि अर्थव्यवस्थाओं और राजनीति) के साथ इनका पारस्परिक संबंध भी देखता है। इस प्रकार, वेबर की पद्धति में इतिहास का महत्व स्पष्ट होता है। जैसा कि पहले बताया जा चुका है, वेबर ने धर्म संबंधी विभिन्न कृतियाँ लिखी, जिनमें द प्रोटेस्टेंट एथिक एंड द स्पिरिट ऑफ कैपिटलिज्म और प्राचीन भारतीय चीनी और यहूदी धर्म के तुलनात्मक अध्ययन प्रमुख है, देखिए इस पुस्तक के अंत में दी गई संदर्भ ग्रंथ सूची। इस भाग में वेबर की धर्म संबंधित तुलनात्मक और ऐतिहासिक दृष्टि को 'स्पष्ट करने के लिये विश्व में विभिन्न धर्मों के बारे में उसके विचारों पर नजर डाली जायेगी। इस प्रकार में हमने प्रोटेस्टेंट एथिक एंड द स्पिरिट ऑफ कैपिटलिज्म का विवेचन तो नही किया है, फिर भी यह एक अत्यंत महत्वपूर्ण कृति है।

इस कृति के मुख्य विचारों के बारे में आपने पहले विस्तार से पढ़ा है। इस खंड की इकाई 11 में भी (जिसमें पूँजीवाद के संबंध में वेबर के विचार दिये जायेंगे) इस पर पुनः चर्चा होगी। फिर भी आपको यह सलाह दी जाती है। आइए, अब वेबर द्वारा प्रस्तुत विश्व के विभिन्न धर्मों से संबन्धित कुछ मुद्दों का संक्षेप में अध्ययन करें। सबसे पहले भारतीय धर्मों पर उसके विचारों के बारे में पढ़ें।

10.3.1 भारतीय धर्म

1916 में लिखी गई द रिलिजन ऑफ इंडिया नामक कृति में वेबर हिन्दू धर्म, बौद्ध धर्म और जैन धर्म का उल्लेख करता है। उसके अनुसार हिन्दू धर्म को जाति व्यवस्था के संबंध में देखना चाहिए। जाति व्यवस्था शुरू में काम-काज में विशेषज्ञता पर आधारित थी। लेकिन कालान्तर में यह वंशानुगत हो गई, ब्राह्मण जाति सबसे शक्तिशाली बनी। इस जाति के सदस्यों को ही शास्त्र पढ़ने का अधिकार था, अतः पांरपरिक विचारों का प्रचार इन्हीं के हाथों में केन्द्रित रहा। निम्न जातियाँ, खास कर के शूद्र अत्यंत शोषित थी, चूंकि उन्हें ''अपवित्र'' माना जाता था। इसलिये ये धार्मिक ग्रंथों के अध्ययन से वंचित थी। परिणामस्वरूप वे मोक्ष के लायक भी समझी नहीं जाती थीं। मोक्ष या मुक्ति ही हिन्दुओं का परम उद्देश्य माना जाता है। वेबर के अनुसार हिन्दू धर्म का मूल मंत्र ''कर्म'' की अवधारणा है। मनुष्य की परिस्थिति पिछले जन्म में किये गये अच्छे या बूरे कर्मों का फल है। यदि व्यक्ति इस जन्म में धर्मानुसार कर्म करे, तब अगले जन्म में इसका उचित फल मिलेगा। ब्राह्मण का धर्म है शास्त्रों का अध्ययन करना, क्षत्रिय का धर्म है उसकी प्रजा और भूमि की रक्षा करना, वैश्य का धर्म व्यापार है और शूद्र से अन्य जातियों की सेवा अपेक्षित है। पिछले कर्मों से ही इस जन्म में व्यक्ति की जाति निर्धारित होती है, और अगले जन्म में ऊँची जाति में जन्म लेने के लिये धर्म का पालन अति आवश्यक है। लेकिन सबसे परम लक्ष्य मोक्ष ही है, जिससे जन्म, मृत्यु और पुनर्जन्म के चक्र से मुक्ति मिलती है। मोक्ष ही जीवन की अनिश्चिता और दुःख का अंतिम समाधान है।

भौतिक उन्नति वांछनीय है, किन्तु यह क्षणिक है। आध्यात्मिक उन्नति में स्थिरता है। आध्यात्मक पूँजी का मूल्य कभी कम नहीं होता। इसी के द्वारा जन्म, मृत्यु और पुनर्जन्म के चक्र से मुक्ति मिल सकती है। आध्यात्मिक लक्ष्यों की प्राप्ति से ही मोक्ष मिलता है। वेबर यह दिखाने का प्रयास करता है कि इसी आध्यात्मिक संयम वाली प्रकृति ने पूँजीवाद को

नहीं पनपने दिया। यह उल्लेखनीय है कि मध्यकालीन भारतीय नगर उत्पादन के विख्यात केन्द्र माने जाते थे। तकनीकी काफी विकसित थी। भौतिक परिस्थितियाँ उपयुक्त थी। परन्त, हिन्दू मान्यताओं के अनुरूप भौतिक क्षेत्र को विशेष महत्व नहीं दिया गया।

वेबर के अनुसार बौद्व और जैन धर्म शान्तिप्रिय धर्म थे। इन्होंने हिन्दू धर्म की रूढियों का विरोध किया। ये धर्म ध्यान (contemplation) पर ज़ोर देते थे। इनके अनुयायी सन्यासी या भिक्षुक थे, जिन्होंने लौकिक संसार को त्याग दिया था। सामान्य लोग भिक्षुक को दान देकर पुण्य प्राप्त कर सकते थे, परन्तु निर्वाण या मुक्ति पाने के लिये सांसारिकता को त्यागकर सन्यास लेना अनिवार्य था।

जाति व्यवस्था तथा हिन्दू धर्म, बौद्व धर्म और जैन धर्म के विश्वास एक दूसरे के पूरक थे, और पूँजीवाद के पनपने में बाधक सिद्व हुए, हालांकि पूँजीवाद के फूलने-फलन के लिये मध्यकालीन भारतीय नगर केन्द्र थे। भारत एक परंपरागत देश बना रहा जिसकी सामाजिक व्यवस्था अत्यंत मजबूत थी (देखिये कॉलिन्स 1986:111-118)।

19.3.2 चीनी धर्म

1916 में वेबर ने द रिलिजन ऑफ चाइना (चीनी धर्म) भी लिखी। चीन के पांरपरिक कन्फ्यूशियस धर्म का उल्लेख करते हुये उसने कहा कि यह धर्म भी प्रोटेस्टेंट धर्म की तरह ''इहलौकिक आत्मसंयम'' (this worldly asceticism) पर ज़ोर देता है। किन्तु प्रोटेस्टेंट नीतियाँ विश्व के नियंत्रण और परिवर्तन पर ज़ोर देती है जबकि दूसरी ओर कन्फ्यूशियस नीतियाँ संतुलन की परिकल्पना को अपनाती है। विश्व और ब्रह्मांड की व्यवस्था उपयुक्त अनुष्ठानों कौर कर्मकांडो द्वारा बनायी जाती है। बोलने-चालने के उचित ढंग को अत्यन्त महत्वपूर्ण माना जाता था। सत्ताधारी वर्ग (चीन का मंडारिन या पंडित वर्ग) बोलचाल के तरीकों और नीति नियमों का रक्षक था। सामाजिक व्यवस्था और संतुलन को बनाये रखने को इतना अधिक महत्व देने के परिणामस्वरूप विश्व को बदलने की प्रवृति (जो कि पूँजीवाद की मूल प्रवृति है) को प्रोत्साहन नहीं दिया गया। इस प्रकार कन्फ्यूशियस धर्म की प्रमुख नीतियाँ, संयम और संतुलन आदि पूँजीवाद की प्रवृति के विपरीत थी।

19.3.3 प्राचीन यहूदी धर्म

एंशिएंट जुडाइज़्म नामक वेबर की महत्वपूर्ण कृति 1917 और 1919 के दौरान लिखी गई। पाश्चात्य समाज के परिवर्तनों को समझने के लिये यह कृति अत्यंत महत्वपूर्ण है।

यहूदी धर्म से ही इस्लाम और ईसाई धर्म का उद्गाम हुआ। ये सभी धर्म विश्व के परिवर्तन पर ज़ोर देते है। इस विचार के परिणाम अत्यंत महत्वपूर्ण है। इससे दुनिया को नियंत्रित कर उसे बदलने को अनुयायी प्रेरित होते हैं। परिवेश पर नियंत्रण पाना ही आधुनिक पाश्चात्य सभ्यता का प्रमुख लक्षण है। यहूदी पैगम्बर नैतिक पैगम्बर थे, जिन्होंने अनुयाइयों को अपने आदेशों और सदेशों द्वारा एक जुट करने का प्रयास किया। वे फिलिस्तीन के असंतुष्ट, शोषित किसानों को यह सीख देते थे कि दैविक प्रकोप देश को नष्ट कर देगा। वे कहते थे कि ईश्वर शहरों में बसे ऐशो-आराम की जिन्दगी बिताने वाले सत्ताधारी वर्ग से कुद्ध था। जब तक इस वर्ग का पतन नहीं होता और ईश्वर के मार्ग पर चलने वाला समाज स्थापित नहीं होता तब तक फिलिस्तीन में खुशहाली नहीं हो सकती। इस्लाम और ईसाई धर्म में भी नैतिक पैग़म्बर होते हैं, जो एक विशिष्ट प्रकार की आचार-पद्वति का प्रचार करते हैं।

1920 में वेबर का देहान्त हो गया। ईसाई धर्म और इस्लाम पर वेबर के लेख अधूरे ही रह गये। वह विश्व के धर्म संबंधी अपने सारे शोधकार्य को मिलाकर पूँजीवाद के उदय और विकास से जुड़े इस प्रश्न का समाधान खोजना चाहता था, परन्तु इस स्वप्न को वह साकार नहीं कर सका।

आगे पढ़ने से पहले सोचिए और करिए 2 का पूरा करें।

सोचिए और करिए 2

उपरोक्त जानकारी को पढ़ने के बाद, धर्म पर वेबर के विचारों को ध्यान में रखते हुए पैग़म्बर मुहम्मद और ईसा मसीह के बारे में जानकारी इकट्ठा करें। इसके आधार पर दो पृष्ठ का लेख लिखें। आपके लेख में जो महत्वपूर्ण बातें होनी चाहिए वे इस प्रकार हैः(क) उनकी जीवन वष्तान्त (ख) उनके उपदेश (ग) उनके उपदेशों का प्रभाव।

इस इकाई का उद्देश्य वेबर के धर्म संबंधी अध्ययन के मुख्य विषय यानि धार्मिक विचारों और मनुष्य के क्रियाकलाप के बीच संबंध को उजा़गर करना है। याद रहे, वेबर ने कर्ता की सार्थकता के संदर्भ में मानवीय कार्यों की व्याख्या की है। प्राचीन भारत में एक अछूत जाति व्यवस्था से विद्रोह क्यों नहीं कर सकता था इस प्रश्न के उत्तर में वेबर ने धार्मिक विश्वास पर आधारित उस व्यवस्था को दर्शाया, जिसमें व्यक्ति द्वारा विश्व को बदलने की रोक थी। इसी प्रकार पूर्वनियति और ईश्वरीय आह्वान की धारणाओं ने प्रोटेस्टेंट लोगों को मेहनत करने और पूँजी इकट्ठा करने के लिये प्रेरित किया। धर्म के संबंध में वेबर के विचारों से अनेक अमरीकी और भारतीय समाजशास्त्री प्रभावित हुए हैं।

वेबर की कृतियाँ पैगम्बरों की भूमिका को दर्शाती हैं। वेबर यह भी दिखाता है कि किस प्रकार धार्मिक विश्वास समाज के विशिष्ट वर्गों से संबंधित है। कम्फ्यूशियस धर्म सत्ताधारी मंडारिन वर्ग से जुड़ा था, हिन्दू धर्म जाति व्यवस्था को प्रोत्साहित करने वाले ब्रह्मणों से, और यहूदी धर्म शोषित, असंतुष्ट ग्रामीण लोगों से।

अगले भाग में, दर्खाइम और वेबर के विचारों की तुलना की जायेगी। लेकिन इससे पहले, बोध प्रश्न 3 के उत्तर दीजिए।

बोध प्रश्न 3

निम्नलिखित वाक्यों को रिक्त स्थानों की पूर्ति द्वारा पूरा करें।

क) वेबर के अनुसार, हिन्दू धर्म का प्रमुख विश्वास ..... है।

ख) हिन्दू धर्म का परम उद्देश्य .....की प्राप्ति है।

ग) ..... की कम्फ्यूशियस कल्पना के कारण ही चीन में पूँजीवाद पनप नहीं सका।

घ) विश्व का ..... और ..... ही आधुनिक पाश्चात्य सभ्यता का प्रमुख लक्षण है।

ड) वेबर ने मानवीय क्रिया की व्याख्या के संदर्भ में की है।

10.4 दर्खाइम और वेबरः तुलना

प्रत्येक चिंतक की विचारपद्वति उसे एक दृष्टिकोण प्रदान करती है जिससे उसे व्यावहारिक मुद्दों का अध्ययन करने में मदद मिलती है। खंड की पहली इकाई में आपने पढ़ा है कि किस प्रकार दर्खाइम सामाजिक तथ्यों को बाहरी वस्तुओं की तरह देखता है। समाज में

स्वतंत्र अस्तित्व (suigeneris है, समाज व्यक्ति के पहले भी था, और व्यक्ति के बाद भी रहेगा। व्यक्ति को समाज का अंग बनाने के लिये समाज उस पर कुछ प्रतिबन्ध लगाता है।

दूसरी और वेबर व्यक्ति या कर्ता पर ध्यान केन्द्रित करता है। कर्ता की आचार पद्वति उसके मूल्यों और विश्वासों पर आधारित होती है। वेबर के अनुसार बोध अथवा जर्मन शब्द फर्स्टेहन (verstehen) द्वारा इनका अध्ययन करना समाजशास्त्री का उद्देश्य होना चाहिए। दर्खाइम तथा वेबर की इन विपरीत विचारधाराओं का प्रयास धर्म के अध्ययन द्वारा स्पष्ट होता है।

आइए, सबसे पहले दर्खाइम और वेबर की विश्लेषण की इकाइयॉ देखें। उन्होनें बहुत ही भिन्न धर्म-व्यवस्थाओं को चुना जिनकी सामाजिक पृष्ठभूमि भी बहुत भिन्न है।

10.4.1 विश्लेषण की इकाइयाँ

जैसे कि आपने पढ़ा है, दर्खाइम ने धर्म के सरलतम रूप का अध्ययन किया। उसने जनजातीय समाजों का अध्ययन किया है जिनमें सामूहिक जीवन अत्यधिक महत्वपूर्ण है। समान मान्यताएँ और भावनाएँ ऐसे समाजों को एकात्म करती है। इन समाजों का कोई लिखित इतिहास नहीं होता है। धर्म और कुल (clan) व्यवस्था का गहरा संबंध होता है। इस प्रकार दर्खाइम धर्म को एक सामूहिक तथ्य के रूप में देखता है जिससे सामाजिक बंधन और अधिक मज़बूत बनते है।

दूसरी ओर वेबर के विश्लेषण की इकाई में विश्व के विकसित धर्म के अध्ययन हैं। उनके ऐतिहासिक आधार और आर्थिक गतिवधियों में उनके योगदान पर उसका अपना ध्यान आकृष्ट होता है। वह विश्व के इन महान धर्मों को समकालीन सामाजिक परिस्थितियों की प्रतिक्रियाओं के रूप में देखता है। उदाहरण के लिये बौद्व धर्म और जैन धर्म ने जाति व्यवस्था का विरोध किया गया। यहूदी धर्म शोषित फिलिस्तीनी ग्रामवासियों का धर्म था। प्रोटेस्टेंट धर्म कैथोलिक चर्च की विलासिताओं के प्रति विरोध का प्रतीक था। संक्षेप में दर्खाइम सरलतम धर्मों के अध्ययन द्वारा धर्म को सामाजिक व्यवस्था बनाये रखने में सहायक मानता है। दूसरी ओर वेबर देखता है कि किस प्रकार आचार-विचार के नये तरीके विकसित करने में धर्म की रचनात्मक भूमिका होती है।

10.4.2 धर्म की भूमिका

यह कहा जा सकता है कि दर्खाइम धर्म को सामूहिक चेतना की अभिव्यक्ति मानता है। टोटम की पूजा का वास्तविक अर्थ है, कुल (clan) की पूजा। इस प्रकार कुल द्वारा सम्मानित विचार और विश्वास व्यक्तिगत चेतना के अंग बन जाते है। पवित्र और लौकिक क्षेत्रों के बीच मध्यस्थता अनुष्ठानों द्वारा की जाती है। कुछ महत्वपूर्ण अनुष्ठानों में कुल के सारे सदस्य भाग लेते हैं, जिससे सामूहिक उत्साह उत्पन्न हो जाता है। व्यक्ति सामाजिक बंधनों में बाँधे जाते हैं, समाज की महानता और शक्ति का उन्हें अहसास दिलाया जाता है।

दूसरी ओर, वेबर धर्म को आर्थिक, राजनैतिक और ऐतिहासिक परिपेक्ष्य में देखना चाहता है। समाज की अन्य व्यवस्थाओं से उसका पारस्परिक संबंध किस प्रकार का है? समाज और धर्म एक दूसरे को किस प्रकार प्रभावित करते हैं?

प्रत्येक समाज की अलग-अलग सांस्कृतिक विशेताओं पर वेबर ध्यान देता है। धर्म को वह उस व्यापक ऐतिहासिक प्रक्रिया का अंग मानता है, जिसके अंतर्गत पूँजीवाद, औद्योगीकरण और तर्कसंगति का विकास शामिल है। इस खंड की इकाई 11 में इस मुद्दे पर और अधिक विस्तार से चर्चा की जायेगी।

आपने पढ़ा कि किस प्रकार इन चिंतकों के विश्लेषण की इकाइयाँ भिन्न थीं। धर्म की भूमिका के संबंध में भी उनके विचार भिन्न-भिन्न थे। परिणामस्वरूप दर्खाइम और वेबर द्वारा इस्तेमाल की गई परिकल्पनाओं और अवधारणाओं में भी अंतर है। वेबर बिना झिझक के उन परिकल्पनाओं का प्रयोग करता है जिन्हें दर्खाइम ने हमेशा दूर रखा। आइए इस बात पर आगे और अधिक विस्तार से चर्चा करें।

सोचिए और करिए 3 विश्व के मानचित्र पर i) भारत, ii) चीन, iii) फिलिस्तीन, iv) आस्ट्रेलिया को अंकित कीजिए। इन देशों में व्याप्त धर्मों की सूची बनाइए।

10.4.3 देवता, भूत-प्रेत और पैग़म्बर

दर्खाइम इस बात से सहमत नहीं है कि देवताओं, भूत-प्रेतों जैसी रहस्यमय बातों से धर्म संबंधित है। वह मानता है कि स्वंय समाज को ही पूजा जाता है, जिसे प्रतीकात्मक वस्तुओं द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। वेबर देवताओं और भूत-प्रेतों के बारे में लिखने से नहीं हिचकता। याद रखें, वह ऐसे धर्मों का अध्ययन करता है जिनका विकास जनजातीय धर्मों की तुलना में बहुत देर से हुआ। इन धर्मों में व्यक्तिगत गुणों का समावेश है, और उनमें एक प्रकार की अमूर्तता है। अमूर्तता का संबंध प्रतीकात्मकता से होता है।

आइए, इस संदर्भ में टोटमवाद का उदाहरण लें। दर्खाइम के अनुसार, टोटम कुल का प्रतीक है। वेबर ऐसे टोटम का उदाहरण देता है जिसकी पूजा भी होती है, साथ-साथ उसकी आहूति देकर उसे खाया भी जाता है। ऐसी दावत में जनजाति के देवताओं और भूत-प्रेतों को भी बुलाया जाता है। टोटम प्राणी को खाने से कुल के सदस्यों में एकात्मता की भावना उत्पन्न होती है। वे मानते है कि प्राणी की आत्मा उनमें प्रवेश करती है। इस प्रकार के टोटम को एक चिन्ह या प्रतीक मात्र नहीं मानते हैं बल्कि उसका सार-तत्व आपस में बॉटकर (जो कि न सिर्फ हाड़-मॉस अपितु आत्मा भी है) कुल के सारे सदस्य एकात्म हो जाते है।

दर्खाइम की तुलना में वेबर पैग़म्बरों की भूमिका को अधिक महत्वपूर्ण मानता है। यहूदी धर्म, इस्लाम और ईसाई धर्म के इतिहास में अनेक नैतिक पैग़म्बरों का उल्लेख है जिन्हें लोग ईश्वर का प्रतिनिधि मानते थे, और यह मानते थे कि ईश्वर के साथ पैग़म्बरों का सीधा सम्पर्क है। इस संदर्भ में इब्राहीम, मूसा, मुहम्मद, ईसा जैसे करिश्माई नेतृत्व वाले व्यक्तियों के नाम गिने जा सकते हैं, जिन्होंने लोगों को अत्यधिक आकृष्ट किया।

संक्षेप में, दर्खाइम इस बात को नकारता है कि धर्म मूलतः भूत-प्रेतों और देवताओं से संबंधित है। वह मानता है कि धर्म के द्वारा स्वंय समाज को ही पूजा जाता है ताकि सामाजिक बंधन और अधिक मज़बूत बनें और व्यक्ति समाज की शक्ति और अमरत्व को अनुभव कर सकें। वेबर धर्म के प्रतीकात्मक पक्ष पर ध्यान देता है। भूत-प्रेत और देवताओं जैसी अमूर्त कल्पनाएं इन्हीं प्रतीकात्मक विचारों के उदाहरण होते है। धार्मिक विश्वासों का स्वरूप बदलने और पुनर्निमित करने में करिश्माई व नैतिक पैग़म्बरों के योगदान के संबंध में भी वह चर्चा करता है।

आइए, अब धर्म और विज्ञान के अंतसंबध के बारे में दर्खाइम और वेबर के विचारों पर एक नज़र डालें।

10.4.4 धर्म और विज्ञान

जैसा कि आपने पढ़ा है, दर्खाइम धर्म और विज्ञान दोनों को सामूहिक प्रतिनिधान मानता है। वैज्ञानिक वर्गीकरण मूलतः धर्म से लिया जाता है। इस प्रकार, धर्म और विज्ञान के बीच कोई

संघर्ष या भेद नहीं हो सकता है। वेबर इससे सहमत नहीं है। विश्व के धर्मों के तुलनात्मक अध्ययन द्वारा उसने स्थापित किया कि किस प्रकार भारतीय और चीनी नेताओं ने पूँजीवाद को पनपने का अवसर नहीं दिया। प्रोटेस्टेट धर्म ने ही तर्कसंगत पूँजीवाद के पनपने के लिये उपयुक्त विचारधारा प्रदान की। वेबर के अनुसार विज्ञान तर्कसंगति का प्रतीक है जो कि धर्म की रहस्यवादी और परंपरागत मान्यताओं को चुनौती देता है। विज्ञान मनुष्य को आनुभाविक जानकारी देता है और उसे अपने परिवेश को समझने में और उस पर नियंत्रण करने में सहायता देता है। इस प्रकार, वेबर मानता है कि धर्म और विज्ञान एक दूसरे से विपरीत है।

इन चिंतकों के विचारों की तुलना करना आसान नहीं है जिन समाजों की वे बात कर रहे है, वे इतने भिन्न हैं कि उनके निष्कर्ष में अंतर होना स्वाभाविक ही है। फिर भी कुछ बातें उल्लेखनीय हैं। दर्खाइम धर्म को वह माध्यम मानता है, जिसके द्वारा व्यक्ति समाज की भौतिक और नैतिक शक्ति को स्वीकार करता है। धर्म वस्तुओं और परिकल्पनाओं के वर्गीकरण का एक प्रयास है। विज्ञान का उद्‌गम इसी से होता है।

वेबर धर्म का अध्ययन अनुयाईयों द्वारा दिये गये अर्थों और उनके क्रियाकलापों और अन्य सामाजिक गतिविधियों पर उसके प्रभाव के संदर्भ में करता है, विज्ञान धर्म को चुनौती देता है, और भूत-प्रेतों को भगाकर उनकी जगह प्रयोगसिद्व जानकारी स्थापित करता है।

धर्म के अध्ययन हेतु विचार दर्शन की दृष्टि से दर्खाइम एंव वेबर में तुलना करते हुए तालिका 10.1 में दिखाया गया है कि इन दोनों विचारकों ने किस प्रकार धर्म को विभिन्न दृष्टिकोणों से देखा।

तालिका 10.1: धर्म के अध्ययन हेतु विचार दर्शन

	एमिल दर्खाइम का विचार दर्शन	मैक्स वेबर के विचार दर्शन
i)	प्राचीन धर्मों का अध्ययन	विश्व के विकसित धर्मों का अध्ययन
ii)	धर्म सामूहिक चेतना की अभिव्यक्ति है	धर्म, राजनीतिक, अर्थव्यवस्था, इतिहास आदि अंतर्संबंधित है
iii)	''देवता'', ''भूत-प्रेत'', ''पैगम्बर'' जैसी कल्पनाओं की उपेक्षा	इन्हीं परिकल्पनाओं का भरपूर इस्तेमाल
iv)	धर्म और विज्ञान एक दूसरे के पूरक हैं। अतः इनके बीच संघर्ष नहीं है।	धर्म और विज्ञान विपरीत है।

बोध प्रश्न 4

निम्नलिखित वाक्यों को पूरा करें।

क) दर्खाइम धर्म के ..... रूप का अध्ययन करता है, जबकि वेबर ..... का अध्ययन करता है।

ख) ईसा, मूसा, ईब्राहीम और मोहम्मद ..... है।

ग) भूत-प्रेत और देवता की कल्पनाएं ..... का परिणाम है।

10.5 सारांश

इस इकाई में हमने देखा कि एमिल दर्खाइम और मैक्स वेबर ने किस प्रकार धर्म को सामाजिक तथ्य मानकर उसका अध्ययन किया। सबसे पहले हमने दर्खाइम के विचारों पर चर्चा की। सरलतम धर्म का अध्ययन करने में उसका उद्देश्य, धर्म की व्याख्या, टोटमवाद का अध्ययन, धर्म और विज्ञान के बीच अंतर्संबंध के पक्षों पर हमने नज़र डाली।

इसके पश्चात् हमने वेबर के योगदान की चर्चा की। ''प्रोटेस्टेंट एथिक'' संबंधित उसके विचार न दोहराते हुए भी बार-बार उसका उल्लेख किया गया। हमने देखा कि किस प्रकार वेबर ने भारतीय और चीनी धर्मों और प्राचीन यहूदी धर्म का अध्ययन किया, और पूँजीवाद के उदय के संदर्भ में उसने किस प्रकार धर्म और अन्य सामाजिक उप-व्यवस्थाओं के बीच अंतर्संबंध को स्थापित किया।

अंत में हमने इन चिंतकों के विचारों में निम्नलिखित पक्षों में अंतर देखा।

1) विश्लेषण की इकाइयाँ।

2) धर्म की भूमिका।

3) परिकल्पनाओं और अवधारणाओं में अंतर।

4) धर्म और विज्ञान का अंतर्संबंध।

10.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

i) क) इससे जटिल धर्म को समझना आसान हो जाता है।

ख) विश्वास और अनुष्ठान

ग) आम, साधारण वस्तुओं

ii) दर्खाइम के अनुसार जादू टोना निर्जी और स्वार्थी मामला है। इसमें जादूगर और ग्राहक के बीच ही संबंध होता है। दूसरी ओर धर्म सार्वजनिक और सामाजिक है। सामाजिक बंधनों द्वारा अनुयायी एक दूसरे के साथ जुड़ जाते है। इस प्रकार, सामाजिक एकात्मता को बढ़ावा मिलता है।

बोध प्रश्न 2

i) टोटम के सदस्य अपने आप को एक समान पूर्वज के वंशज मानते हैं। इसलिए खून का रिश्ता न होते हुए भी वे एक दूसरे से शादी नहीं कर सकते हैं।

ii) समाज व्यक्ति से पहले था और उसके जाने के बाद भी रहेगा। समाज व्यक्ति से ज्यादा शक्तिशाली और अमर है, अतः उसे पूजा जाता है।

iii) दर्खाइम धर्म और विज्ञान दोनों को सामूहिक प्रतिनिधान मानता है। उसके अनुसार, विज्ञान का उद्गम धर्म से ही हुआ। व्यक्ति, प्रकृति और समाज को समझने के इन दोनों प्रयासों (विज्ञान और धर्म द्वारा) के बीच संघर्ष असंभव है।

बोध प्रश्न 3

i) क) कर्म की धारणा

ख) मोक्ष

ग) संतुलन

घ) नियंत्रण, परिवर्तन

ड) कर्ता की सार्थकर्ता

बोध प्रश्न 4

i) क) सरलतम, विश्व के धर्मों

ख) नैतिक पैगम्बर

ग) प्रतीकात्मकता

10.7 संदर्भ

कालिन्स, रैंडल, 1986. मैक्स वेबरः ए स्केलेटन की, सेज पब्लिकेशन इंकः बेवर्ली हिल्स

दखाईम, एमिल, 1964. एलिमेंटरी फॉर्म्स ऑफ द रिलिजिंस लाइफ ऐलन एण्ड अन्विनः लंदन (पुनः मुद्रित)

दखाईम, एमिल, और मॉस, मार्सेल, 1963. प्रिमिटिव क्लासिफिकेशन यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागो प्रेसः शिकागो (पुनः मुद्रित)

जोन्स, रॉबर्ट एंलन, 1986. एमिल दर्खाइम : ऐन इंट्राक्शन टु फोर मेजर वर्क्स, सेज पब्लिकेशन्सः बेवर्ली हिल्स

मॉस, मार्सेल, 1954.द गिफ्टः फार्म्स एण्ड फंक्शन्स ऑफ एक्सचेंज इन आर्केइक सोसायटीच यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागो प्रेसः शिकागो

वेबर मैक्स, 1958. द प्रॉटेस्टेंट एथिक एण्ड द स्पिरिट ऑफ कैपिटलिज्म स्क्रिबरनः न्यूयार्क

वेबर मैक्स. 1951. द रिलीजन ऑफ चाइना कन्फ्यूशियनिज्म एण्ड टाओइज्म फ्री प्रेसः ग्लेनको

इकाई 11 पूँजीवादः मार्क्स और वेबर*

संरचना

11.0 उद्देश्य

11.1 प्रस्तावना

11.2 पूँजीवाद के बारे में कार्ल मार्क्स के विचार

- 11.2.1 पूँजीवाद-मानव इतिहास का एक चरण
- 11.2.2 पूँजीवाद की मुख्य विशेषताएं
- 11.2.3 पूँजीवाद और वर्ग संघर्ष

11.3 पूँजीवाद के बारे में मैक्स वेबर के विचार

- 11.3.1 तर्कसंगति के बारे में वेबर के विचार
- 11.3.2 तर्कसगतिकरण और पाश्चात्य सभ्यता
- 11.3.3 परंपरागत और तर्कसंगत प पूँजीवाद
- 11.3.4 तर्कसंगत पूँजीवाद की पूर्व-शर्तें पूँजीवाद किस तरह के सामाजिक आर्थिक परिवेश में पनप सकता है?
- 11.3.5 तर्कसंगत पूँजीवाद के कारक
- 11.3.6 तर्कसंगत पाश्चात्य समाज का भविष्यः ''लोहे का पिंजरा''

11.4 मार्क्स और वेबर के विचारों की तुलना

- 11.4.1 दृष्टिकोण में अंतर
- 11.4.2 पूँजीवाद का उदय
- 11.4.3 पूँजीवाद के परिणाम और पूँजीवाद व्यवस्था को बदलने का उपाय

11.5 सारांश

11.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

11.7 संदर्भ

11.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद, आपके लिए संभव होगा :

- इतिहास के एक चरण के रूप में पूँजीवाद के बारे में कार्ल मार्क्स के विचारों को संक्षेप में समझना;
- पूँजीवाद के बार में मैक्स वेबर के विचारों का विवेचन करना; तथा
- पूँजीवाद के विश्लेषण में इन दोनों विद्धानों के विचारों में समानताओं और अंतर को समझना।

11.1 प्रस्तावना

इस पाठ्यक्रम के अध्ययन से आपको उस सामाजिक-आर्थिक संदर्भ की जानकारी मिल चुकी है जिसके अंतर्गत समाजशास्त्र के संस्थापकों ने अध्ययन किया और इस विषय को

*यह इकाई ESO-13, इकाई 21 से अनुग्रहित एवं संपादित है।

अपने स्थायी तथा महत्वपूर्ण योगदान से समृद्ध किया। आपने यह भी पढ़ा कि इन विद्वानों ने एक ऐसे दौर में काम किया जिसमें समाज अत्यंत तेज गति से बदल रहा था। तेजी से बदलते विश्व की समस्याओं की छाप इन विद्वानों के अध्ययन और विचारों पर स्पष्ट दिखाई देती है। इकाई 9 में हमने श्रम विभाजन के बारे में एमिल दर्खाइम और वेबर की धारणाओं का अध्ययन किया। इस इकाई में पूँजीवाद के बारे में कार्ल मार्क्स और मैक्स वेबर के विचारों के बारे में बताया जाएगा। भाग 11.2 में कार्ल मार्क्स के विचार प्रस्तुत किये जाएंगे। भाग 11.3 में पूँजीवाद के बारे में मैक्स वेबर का दृष्टिकोण प्रस्तुत किया जाएगा। अंतिम भाग (11.4) में इन दोनों विद्वानों के विश्लेषण में समानतओं और अंतर पर विचार किया जाएगा।

11.2 पूँजीवाद के बारें कार्ल मार्क्स के विचार

आर्थिक ढांचे में उत्पादन की एक विशिष्ट प्रणाली तथा उत्पादन के संबध निहित हैं। उत्पादन की प्रणाली ऐतिहासिक काल खंडों में समान नही होती। यह इतिहास के परिवर्तन के साथ-साथ बदलती है। मार्क्स और एंगल्स ने विश्व इतिहास को विशिष्ट चरणों में विभाजित किया। इनमें से प्रत्येक चरण का आर्थिक स्वरूप अलग-अलग था। इस आर्थिक ढांचे से ही अन्य सामाजिक उपव्यवस्थाओं जैसे राजनैतिक व्यवस्था, धर्म, नैतिक मूल्य और संस्कृति आदि का स्वरूप निर्धारित होता है। इन उप व्यवस्थाओं को अधिसंरचना (superstructure) कहा जाता है। मार्क्स और एंगल्स ने इतिहास को निम्न चार चरणों में बांटा है। (i) प्रारंभिक साम्यवादी (communal) चरण, (ii) दास-प्रथा पर आधारित प्राचीन चरण, (iii) सामंतवादी चरण, (iv) पूँजीवादी चरण। उत्पादन की विशिष्ट प्रणालियों के अनुसार मान इतिहास के विभिन्न चरणों का अध्ययन मार्क्स के ऐतिहासिक भौतिकवाद के सिद्धांत का आधार है। जैसा कि बताया जा चुका है, इनमें से हर चरण में उत्पादन की एक खास प्रणाली है। प्रत्येक चरण को इतिहास की एक कड़ी माना जाता है। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि हर चरण के अपने अंतविरोध और तनाव होते है। इन अंतविरोधों के एक सीमा से ज्यादा बढ़ जाने पर व्यवस्था ही बिखर जाती है और पिछले चरण के गर्भ से नया चरण जन्म लेता है।

11.2.1 पूँजीवाद – मानव इतिहास का एक चरण

मार्क्स के ऐतिहासिक विश्लेषण के अनुसार, पूँजीवादी चरण सांमती व्यवस्था के अंतर्विरोधों का सहज परिणाम है। सामंती व्यवस्था में कृषि दासों का जमीदारों (lords) द्वारा शोषण होता था। यह सांमती व्यवस्था जब अपने तनावों से बिखर गई तो जमीदारों के कब्जे से बड़ी संख्या में काश्तकार (tenants) मुक्त हुए। ये लोग निरंतर बढ़ते हुए नगरों में बसे, इससे वस्तुओं के उत्पादन के लिए बड़ी संख्या में श्रमिक उपलब्ध हुए। नयी मशीनों का विकास, फैक्टरी प्रणाली और बड़े पैमाने पर उत्पादन से नयी आर्थिक प्रणाली पूँजीवाद का जन्म हुआ।

यह बात हमेशा ध्यान में रखनी चाहिए कि मार्क्स ने पूँजीवाद मानव समाज के विकास का ऐसा चरण है जिसका जन्म उसके पिछले चरण के अंतर्विरोधों के कारण हुआ। इस चरण में भी अपने अंतर्विरोध हैं, जिनके बारे में आगे चर्चा की जाएगी। पूँजीवाद व्यवस्था में अंतर्निहित अंतर्विरोधों से एक नये चरण के जन्म के लिए योग्य परिस्थितियां बनेंगी। मार्क्स के अनुसार यह आदर्श समाज साम्यवादी (communist) समाज होगा। इस समाज में पिछले चरणों की तरह अंतर्विरोध और तनाव नहीं होंगे।

11.2.2 पूँजीवाद की मुख्य विशेषताएं

टॉम बॉटोमोर की (1973) ने अपनी पुस्तक डिक्शनरी ऑफ मार्क्सिस्ट थॉट में पूँजीवाद की कुछ प्रमुख विशेषताओं की चर्चा की है। उत्पादन की प्रणाली के रूप में मार्क्स ने पूँजीवाद की निम्न विशेषताएं स्पष्ट की हैं।

i) **उत्पादन निजी इस्तेमाल की बजाय बिक्री के लिए होता है:** पूँजीवाद गुजारा चलाने भर के साधन जुटाने वाली आर्थिक प्रणाली के विकास की अगली कड़ी है। पूर्व पूँजीवादी आर्थिक प्रणालियों में उत्पादन प्रायः सीधे उपभोग के लिए किया जाता है। उदाहरण के लिए, कृषि-केन्द्रित आर्थिक प्रणालियों में किसानों ने अपने इस्तेमाल के लिए ही फसलें उगाई हैं। थोड़ा सा हिस्सा ही बिक्री के लिए बच जाता है। ऐसा इसीलिए होता है कि तकनीकी ज्यादा उन्नत नहीं होती और घर-परिवार के लोग ही सीमित संख्या में काम करते हैं। पूँजीवाद व्यवस्था की स्थिति भिन्न है। इसमें बहुत बड़ी संख्या में श्रमिकों को फैक्टरी में काम करना होता है। उन्हें मशीनों की मदद से और श्रम-विभाजन द्वारा बड़ी मात्रा में वस्तुओं का उत्पादन करना होता है। यह उत्पादन बाजार में बिक्री के लिए किया जाता है। उदाहरण के लिए साबुन बनाने वाली फैक्टरी में उत्पादकों के अपने इस्तेमाल के लिए साबुन नही बनाया जाता बल्कि यह बाजार में बिक्री के लिए बनाया जाता है।

ii) **श्रम-शक्ति खरीदी और बेची जाती है:** मार्क्स का कहना है कि पूँजवादी प्रणाली में केवल श्रम-शक्ति के रूप में आंका जाता है। पूँजीवादी या मालिक उनकी श्रम-शक्ति को मजदूरी देकर खरीदते है। श्रमिक अपनी श्रम-शक्ति को बेचने या न बेचने को कानूनी तौर से स्वतंत्र है। मानव इतिहास के प्राचीन चरणों की तरह, श्रमिकों से दासों या कृषि-दासों की तरह जबरन काम नही कराया जाता। उनकी आर्थिक जरूरतें ही उन्हें काम करने को विवश करती है। उनके सामने दो ही विकल्प हैं- मजदूरी करें या भूख रहें। अतः भले ही श्रमिक पूँजीपति से अनुबंध करने के लिए कानूनी तौर से स्वतंत्र है पर उनकी दो वक्त की रोजी-रोटी की समस्या उन्हें अपना श्रम बेचने पर मजबूर करती है।

iii) **लेन-देन मुद्रा में होता है:** हमने यह पढ़ा कि उत्पादन बिक्री के लिए होता है और यह बिक्री मुद्रा के जरिए होती है। मुद्रा ही वह सामाजिक संबध है जिससे पूँजीवादी प्रणाली के विभिन्न तत्व एक-दूसरे से जुड़े हैं। इसीलिए इस प्रणाली में बैंको तथा वित्तीय संस्थाओं की महत्वपूर्ण भूमिका है।

iv) **पूंजीपति का उत्पादन की प्रक्रिया पर नियंत्रण:** यह विशेषता भी मुद्रा संबंध से जुड़ी है। उत्पादन का मूल्य, श्रमिकों की मजदूरी, वित्तीय निवेश की रकम आदि सभी फैसले पूँजीपति ही करता है।

v) **पूँजीपति का वित्तीय निर्णयों पर नियंत्रण:** इसका संबध उत्पादों का नियंत्रण से है। उत्पादकों को मूल्य निर्धारण, श्रमिकों की मजदूरी, वित्तीय निवेश आदि निर्णय पूँजीपति स्वयं लेता है।

vi) **प्रतिस्पर्धा:** चूंकि उत्पादन का प्रमुख उद्देश्य बिक्री है, अतः पूँजीपत्तियों के बीच में प्रतिस्पर्धा होना स्वाभाविक है। किसका उत्पादन बाजार में सबसे ज्यादा बिकेगा? किसे सबसे ज्यादा मुनाफा होगा? इन सवालों से जो स्थिति पैदा होती है उसमें सारे पूँजीपति दूसरे से आगे निकलना चाहते है। इसके परिणामस्वरूप नये-नये अविष्कार

और नयी तकनीकी का इस्तेमाल होता है। साथ-साथ प्रतिस्पर्धा से एकाधिकार (monopoly) वाली फर्में या समान स्वार्थ के लिए जाने वाली व्यापारी समूह (cartels) ही भी पनप सकते हैं। ऐसी स्थिति में एक उत्पादक या उत्पादकों का समूह अन्य प्रतियोगियों को पछाड़ कर या जबरन हटा कर बाजार पर अपना दबदबा कायम कर लेता है। इससे पूँजी का केंद्रीकरण कुछ गिने-चुने लोगों के हाथों में हो जाता है, अर्थात् पूँजी कुछ ही लोगों के पास रह जाती है।

इस प्रकार मार्क्स के अनुसार पूँजीवाद ऐसी व्यवस्था है जिसमें शोषण, असमानता और वर्गों का धुव्रीकरण अपने चरम पर होता है। इसका मतलब है कि उत्पादन के साधन के मालिकों (अर्थात बुंर्जुआ वर्ग) और श्रमिको (अर्थात् सर्वहारा वर्ग) के बीच सामाजिक अंतर बढ़ता है। पूँजीवाद के संबंध में मार्क्स की ''वर्ग संघर्ष'' की धारणा अत्यंत बढ़ता है। पूँजीवाद की अवधारणा को आत्मसात करने हेतु सोचिए और करिए 1 को पूरा करें।

सोचिए और करिए 1

पूँजीवाद की मुख्य विशेषताओं से संबद्ध उपभाग (11.2.1) को ध्यान से पढ़ें। क्या आपको अपने समाज में ऐसी विशेषताएं नजर आती है? एक पृष्ठ में अपने विचार लिखें और संभव हो तो अपने अध्ययन केन्द्र में अन्य विद्यार्थियों के विचारों से इनकी तुलना करें।

11.2.3 पूँजीवाद और वर्ग संघर्ष

मार्क्स के अनुसार, मानव समाज का इतिहास वर्ग-संघर्ष का इतिहास है। मानव इतिहास के हर चरण में समाज दो वर्गों में बंटा रहा है– साधन संपन्न और अभावग्रस्त। इनमें से साधन संपन्नों का प्रभुत्व रहता है और अभावग्रस्तों का दमन होता है।

पूँजीवाद के बने रहने के मुख्य आधार हैं – निजी संपति, फैक्टरी प्रणाली के अंतर्गत वस्तुओं का बड़े पैमाने पर मुनाफे के लिए उत्पादन और ऐसा श्रमिक वर्ग जो अपनी श्रम-शाक्ति बेचने पर मजबूर है। इन्हीं पूँजीवादी विशेषताओं से समाज में वर्गों के बीच दूरी बढ़ती रहती है और वर्गों का धुव्रीकरण होता है। जैसे-जैसे पूँजीवाद बढ़ता जाता है, वर्गों के बीच अंतर भी बढ़ता जाता है। बुर्जुआ और सर्वहारा वर्गों के हित भी अलग-अलग होते जाते है। सर्वहारा एक जुट हो जाते है क्योंकि वे एक ही समस्याओं से जूझ रहे होते हैं, जिनका समाधान भी समान होता है। इसी प्रकार सर्वहारा वर्ग समाज हितों के लिए संघर्षरत वर्ग बन जाता है। मार्क्स के अनुसार सर्वहारा की क्रांति से इतिहास के नये चरण-''साम्यवाद'' पूँजीवाद के अंतर्विरोध समाप्त होंगे और एक नयी सामाजिक व्यवस्था स्थापित होगी।

संक्षेप में, कार्ल मार्क्स पूँजीवाद को मानव इतिहास की ऐसी स्थिति मानता है जो पिछली स्थिति के अंतर्विरोधों से पनपी है। पूँजीवाद के भी अपने अंतर्विरोध हैं। इस ऐतिहासिक चरण में वर्ग संघर्ष सबसे तीव्र होता है, क्योंकि उत्पादन के साधन कुछ ही हाथों में केन्द्रित होते हैं। श्रमिकों को मात्र श्रम-शक्ति के रूप में आंका जाता है जिसे मजदूरी द्वारा खरीदा बेचा जा सकता है। इस प्रणाली की असमानताओं से वर्गों का ध्रुवीकरण होता है। सर्वहारा वर्ग को अहसास होता है कि उसके समान हित और समान समस्याएं हैं। वह इन समस्याओं को सुलझाने का प्रयास करता है। सर्वहारा अपने हितों के लिए संघर्षरत वर्ग बन जाते हैं। इनकी मुक्ति क्रांति से होगी। सर्वहारा की क्रांति से एक नयी सामाजिक व्यवस्था साम्यवाद का जन्म होगा जिसमें उत्पादन के साधनों पर श्रामिकों का ही स्वामित्व होगा।

अगले भाग में पूँजीवाद के बारे में वेबर के विचारों पर चर्चा की जाएगी। अगले भाग (11.3) पर जाने से पहले बोध प्रश्न 1 को पूरा करें।

बोध प्रश्न 1

i) निम्नलिखित वाक्यों में से सही या गलत बताइए।

क) मार्क्स के अनुसार, प्रारंभिक साम्यवाद चरण के बाद पूँजीवादी व्यवस्था का जन्म होता है। सही / गलत

ख) केवल पूँजीवाद चरण के ही अपने अंतर्विरोध होते हैं। सही / गलत

ग) पूँजीवादी आर्थिक प्रणाली रोजी-रोटी के साधन भर जुटाने वाली आर्थिक प्रणाली है। सही / गलत

घ) पूँजीवादी प्रणाली में श्रामिक दास और कृषि दासों की तरह ही काम करने पर विवश होते हैं। सही / गलत

च) पूँजीवाद के बढ़ने के साथ-साथ वर्गों के बीच संबंध घनिष्ठ होते जाते हैं। सही / गलत

ii) निम्नलिखित प्रश्नों का तीन पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

क) कार्ल मार्क्स ने ''सर्वहारा क्रांति'' का समर्थन क्यों किया?

.....

.....

.....

.....

.....

ख) पूँजीवादी चरण में बैंक और वित्तीय संस्थाएं महत्वपूर्ण क्यों हो जाती है?

.....

.....

.....

.....

.....

ग) पूँजीवाद में वर्गों का ध्रुवीकरण क्यों होता है?

.....

.....

.....

.....

.....

11.3 पूँजीवाद के बार में मैक्स वेबर के विचार

पूँजीवाद पर मैक्स द्वारा किये गए विश्लेषण की इन उप भागों में चर्चा की जाएगी। इस अध्ययन से स्पष्ट होगा कि मैक्स वेबर ने पूँजीवाद का स्वतंत्र और अधिक जटिल विश्लेषण प्रस्तुत किया। वेबर ने एक विशिष्ट प्रकार के पूँजीवाद ''तर्कसंगत पूँजीवाद'' का वर्णन

किया। उसके अनुसार ''तर्कसंगत पूँजीवाद'' पाश्चात्य देशों (पश्चिम यूरोप और उत्तरी अमरीका के देश) में पूरी तरह विकसित हुआ। तर्कसंगति की अवधारणा और उससे संबधित प्रक्रिया मूलतः पाश्चात्य है। ''तर्कसगति और तर्कसंगत पूँजीवाद'' के बीच संबंध को समझना जरूरी है। इसीलिए, सबसे पहले तर्क संगति के बारे में मैक्स वेबर के विचारों की चर्चा की जाएगी।

कोष्ठक 11.3: पाश्चात्य संगीत को तर्कसंगत बनाने के प्रयास

1911 में वेबर ने एक पुस्तिका लिखी रेशनल एंड सोशल फाउंडेशन म्यूजिक। इसमें उसने पाश्चात्य संगीत के विकास में बढ़ती तर्कसंगति का विशलेषण किया। पाश्चात्य संगीत में सरगम का क्रम (scale) आठ सुरों (octave) में बंटा है और हर सुर की बारह तानें (notes) होती हैं। मंद्र तथा स्वरों में समान ध्वनियों वाली तानें है। इसमें संगीत-लहरी एक नियमित क्रम में आगे या पीछे लायी जा सकती है। पाश्चात्य संगीत में ''बहुस्वरता'' (polyvocality) भी होती है अर्थात् अनेक वाद्यों का वादन एक साथ एक ही तान में होता है। वेबर के अनुसार ''बहुस्वरता'' से वाद्यवंष्द (Orchestra) बनता है और इस तरह पाश्चात्य संगीत एक संगठित प्रयास बन जाता है। संगीतकारों की विशिष्ट भूमिका का तर्कसंगत ढंग से ताल मेल बिठाया जाता है। इस तरह संगीत भी नौकरशाही की तरह सुसंबद्ध हो जाता है। इसके अलावा पाश्चात्य संगीत के अंकन की अपनी स्वरलिपि प्रणाली है। संगीतकार अपनी संगीत-रचनाओं को इन स्वरलिपि प्रणाली में लिख लेते हैं और इस प्रकार उनके कार्य को मान्यता मिलती है, उन्हें सर्जन कलाकार के रूप में मान्यता मिलती है और अन्य संगीतकारों के लिए उनकी रचनाएं आदर्श बन जाती है। भावी संगीतकारों उनकी नकल करने और उनसे भी आगे निकलने का प्रयास करते हैं। इस तरह पाश्चात्य संगीत एक निश्चित क्रम में व्यवस्थित और संगठित है। इसमें गतिशीलता है और एक-दूसरे से बेहतर कर दिखाने की प्रतिस्पर्धा है। एक तरह से संगीतकार संगीत के क्षेत्र के उद्यमी हैं।

आइए, अब देखें कि वेबर द्वारा दी गई तर्कसंगत अर्थव्यवस्था और तर्कसंगत पूँजीवाद अन्य आर्थिक प्रणलियों से किस प्रकार भिन्न हैं और उसने पूँजीवाद के विकास में सहायक सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था का किस प्रकार विवेचन किया।

11.3.1 तर्कसंगति के बारे में वेबर के विचार

पूँजीवाद के बारे में मैक्स के विचारों को समझने के लिए तर्कसंगति की उसकी अवधारणा को समझना जरूरी है। पश्चिमी देशों में तर्कसंगति का विकास पूँजीवाद से जुड़ा रहा है। तर्कसंगति तथा तर्कसंगतिकरण से वेबर का क्या तात्पर्य है? संक्षेप में, तर्कसंगत बनाने का तात्पर्य मानवीय गतिविधियों को ऐसे नियमित और निर्धारित तरीके से व्यवस्थित और समन्वित करना है जिससे परिवेश पर मानवीय नियंत्रण कायम हो सके। घटना-क्रम को प्रकृति या किस्मत के भरोसे नही छोड़ा जाता। लोगो को अपने आस-पास के परिवेश के व्यवस्था की ऐसी समझ हो जाती है कि प्रकृति रहस्मय और अनिश्चित नही रह जाती। विज्ञान और तकनीकी, लिखित नियमों और कानूनों के द्वारा मानवीय गतिविधयाँ सुसंबद्ध हो जाती है। रोजमर्रा की जिंदगी से एक उदाहरण लें। किसी कार्यालय में एक पद रिक्त होता है। इस पर भर्ती का एक तरीका यह है कि अपने किसी मित्र या संबधी को नियुक्त कर दिया जाए। लेकिन वेबर के अनुसार यह तर्कसंगत नही होगा। दूसरा तरीका यह है कि पद समाचार-पत्रों में विज्ञापित किया जाए, आवेदन करने वालों के लिए प्रतियोगी परीक्षा आयोजित की जाए, फिर साक्षात्कार परीक्षा हो और सर्वोत्तम परिणाम पाने वाला उम्मीदवार चुन लिया जाए। इस तरीके में कुछ नियमों और आचारों का पालन किया गया है। पहले

तरीके में नियमित प्रक्रिया नही थी, जो दूसरे में अपनायी गयी। वेबर के अनुसार यह प्रक्रिया तर्कसंगतिकार का उदाहरण कहलाती है।

11.3.2 तर्कसंगति और पाश्चात्य सभ्यता

वेबर के अनुसार, तर्कसंगतिकरण पश्चिमी सभ्यता का सबसे विशिष्ट लक्षण है। तर्कसंगति द्वारा प्रभावित पश्चिम देशों में ऐसी अनेक विशेषताएँ शामिल हैं जो विश्व के किसी और भाग में एक साथ कभी नही पायी गई है। ये विशेषताएं निम्न हैं :

i) विज्ञान, यानी पश्चिमी देशों में सुविकसित, प्रमाणित किये जा सकने वाले ज्ञान का भंडार।

ii) एक तर्कसंगत राज्य, जिसमें विशिष्टीकृत संस्थाएं, लिखित नियम तथा राजनीतिक गतिविधि को नियमित करने के लिए संविधान हो।

iii) कलाएं, जैसे पाश्चात्य संगीत, जिसमें स्वरलिपि प्रणाली हो, अनेक वाद्यों का क्रमबद्ध इस्तेमाल हो। इस स्तर की नियमितता अन्य संगीत प्रणालियों में नहीं है। आपको पश्चिमी संगीत के बारे में वेबर के विश्लेषण की और अधिक जानकारी कोष्ठक 11.1 में मिलेगी।

iv) अर्थव्यवस्थाः तर्कसंगत पूँजीवाद में यह स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। अगले उपभागों में सब का विस्तृत विवरण होगा।

तर्कसंगति जीवन के कुछ पक्षों तक ही सीमित नहीं है। यह जीवन के हर क्षेत्र से जुड़ी है। पाश्चात्य समाज का यह सबसे विशिष्ट लक्षण है (देखे फ्राएंड 1972: 17-24)।

11.3.3 परंपरागत और तर्कसंगत पूँजीवाद

क्या पूँजीवाद मात्र लाभ कमाने वाली प्रणाली है? क्या पूँजीवाद के लक्षण मात्र लालच और धन-दौलत की लालसा ही है? इस रूप में पूँजीवादी प्रणाली दुनिया के अनेक भागों में मौजूद थी। प्राचीन बेबीलोन, भारत, चीन और मध्यकालीन यूरोप के व्यापारियों की शक्तिशाली श्रेणियों वाली प्रणाली भी इस अर्थ में पूँजीवादी प्रणाली ही थी। लेकिन ये तर्कसंगत पूँजीवाद नही था।

परंपरागत पूँजीवादी प्रणाली में ज्यादातर परिवार आत्म-निर्भर थे और अपनी बुनियादी जरूरत की वस्तुओं का स्वय उत्पादन कर लेते थे। परंपरागत पूँजीगत में केवल विलासिता की वस्तुओं का व्यापार होता था। बिक्री की वस्तुएं बहुत थोड़ी होती थी और कुछ गिने-चुने लोग ही खरीदार होते थे। विदेश में व्यापार करना जोखिम भरा था। मुनाफे के लालच में ये व्यापारी बहुत ज्यादा कीमत पर वस्तुएं बेचते थे। व्यापार जुए जैसा था। अच्छा धंधा होने पर भी भारी लाभ होता था। पर कामयाबी न मिलने पर नुकसान भी बहुत ज्यादा होता था।

आधुनिक या तर्कसंगत पूँजीवाद विलासिता की कुछ दुर्लभ वस्तुओं के उत्पादन या बिक्री तक सीमित नही है। इसमें रोजमर्रा की जरूरत की तमाम साधारण चीजें खाद्य पदार्थ कपड़े, बर्तन, औजार आदि शामिल हैं। परंपरागत पूँजीगत के विपरीत, तर्कसंगत पूँजीवाद गतिशील है और इसका दायरा फैलता जा रहा है। नये अविष्कार, उत्पादन के नये तरीके और नयी-नयी वस्तुएं निरंतर विकसित की जा रही है। तर्कसंगत पूँजीवाद बड़े पैमाने पर उत्पादन और वितरण पर टिका है। वस्तुओं का लेन-देन पूर्व निर्धारित और बार-बार दोहराए जाने वाले समान तरीके से ही होता है। व्यापार अब जुआ नही है। आधुनिक पूँजीपति कुछ

चुने हुए लोगों को ऊँची कीमत पर चुनी हुई वस्तुएं नहीं बेचते। आधुनिक पूँजीवाद का लक्ष्य ज्यादा से ज्यादा लोगो को ज्यादा से ज्यादा वस्तुएं उचित दामों पर बेचना है।

संक्षेप में, परंपरागत पूँजीवाद कुछ उत्पादकों, कुछ वस्तुओं और कुछ खरीदारों तक सीमित है। उसमें जोखिम बहुत ज्यादा है। व्यापार जुए जैसा है। दूसरी ओर तर्कसंगत पूंजीवाद में सभी बस्तुओं को बिक्री-योग्य बनाने का लक्ष्य रहता है। इसमें बड़े पैमाने पर उत्पादन और वितरण होता है। व्यापार नियमबद्ध होता है। इस चर्चा में, हमने परंपरागत और तर्कसंगत पूँजीवाद के अंतर को समझा। तर्कसंगत पूँजीवाद किस प्रकार के सामाजिक-आर्थिक वातावरण में पनपता है? अब तर्कसंगत पूँजीवाद के विकास के लिए अनिवार्य परिस्थितियों की चर्चा की जाएगी।

बोध प्रश्न 2

निम्नलिखित प्रश्नों का तीन पंक्तियों में उत्तर दें।

i) तर्कसंगतिकरण से वेबर का क्या तात्पर्य है?

.....

.....

.....

.....

ii) परंपरागत पूँजीवाद में व्यापार कैसे किया जाता था?

.....

.....

.....

.....

11.3.4 तर्कसंगत पूँजीवाद की पूर्व-शर्तें : पूँजीवाद किस तरक के सामाजिक - आर्थिक परिवेश में पनप सकता है?

वेबर के अनुसार, आधुनिक पूँजीवाद का बुनियादी सिद्धांत समाज की रोजमर्रा की जरूरतें पूरी करने वाले उत्पादक उद्यम का तर्कसंगत संगठन है। इस इकाई में तर्कसंगत संगठन है। इस इकाई में तर्कसंगत पूँजीवाद के लिए जरूरी पूर्व-शर्तों और उसके लिए उचित सामाजिक-आर्थिक परिवेश की चर्चा की जाएगी।

i) **उत्पादन के भौतिक संसाधनों पर निजी स्वामित्वः** इन भौतिक संसाधनों में भूमि, मशीनें, कच्चा माल, फैक्टरी की इमारत आदि शमिल है। उत्पादन के साधनों पर नियंत्रण होने से निजी उत्पादक व्यापार या उद्यम को संगठित कर सकते हैं और उत्पादन के साधनों को व्यवस्थित कर वस्तुओं के उत्पादन की प्रक्रिया शुरू कर सकते हैं।

ii) **मुक्त बाजारः** व्यापार पर कोई रोक-टोक नही होनी चाहिए। राजनैतिक स्थिति आम तौर पर शांतिपूर्ण होनी चाहिए। इससे आर्थिक गतिविधियां बिना किसी बाधा के चल सकेगीं।

iii) **उत्पादन और वितरण की तर्कसंगत तकनीकः** इस में उत्पादन बढ़ाने के लिए मशीनों का इस्तेमाल शमिल है। साथ ही, इसमें वस्तुओं के उत्पादन और वितरण में विज्ञान और तकनीकी का प्रयोग भी शामिल है ताकि व्यापक मात्रा में विविध प्रकार की वस्तुएं ज्यादा से ज्यादा कुशलता से तैयार की जा सकें।

iv) **तर्कसंगत कानूनः** समाज के सभी लोगों पर लागू होने वाली कानूनी प्रणाली होनी चाहिए। इससके आर्थिक अनुबंध करने की प्रक्रिया सरल हो जाती है। हर व्यक्ति के कुछ कानूनी दायित्व और अधिकार हो जाते हैं और इन्हें लिखित नियमों के रूप में संहिताबद्ध कर लिया जाता है।

v) **स्वतंत्र श्रमिकः** श्रमिकों को अपनी इच्छानुसार कहीं भी और कभी भी काम करने की कानूनी रूप से स्वतंत्रता होती है। मालिक से उनके संबंध अनिवार्य रूप से बाध्यकारी नही, बल्कि स्वेच्छा से किये गये अनुबंध पर आधारित होते हैं। लेकिन मार्क्स की तरह वेबर भी इस बात को स्वीकार करता है कि कानूनन स्वतंत्र होते हुए भी आर्थिक दबाव और भूख उन्हें झुकने पर मजबूर कर देती है। उनकी स्वतंत्रता कहने भर की है। वास्तव में तो जरूरत उन्हें श्रम करने पर विवश करती है।

vi) **अर्थव्यवस्था का वाणिज्यक स्वरूपः** तर्कसंगत पूँजीवादी व्यवस्था में यह पाया जाता है कि हर व्यक्ति उद्यम में भाग ले सकता है। हर व्यक्ति को स्टॉक, शेयर या बांड खरीदने का अधिकार होता है। इस प्रकार उद्यम में जन सामान्य भाग ले सकते हैं।

संक्षेप में, तर्कसंगत पूँजीवाद ऐसी आर्थिक प्रणाली है जिसमें उत्पादन के साधनों पर निजी स्वामित्व तथा नियंत्रण होता है। तर्कसंगत तकनीकी की मदद से वस्तुओं का व्यापक स्तर पर उत्पादन होता है तथा बाजार में बिना किसी रोक-टोक से व्यापार होता है। श्रमिक नियोजकों से अनुबंध करते हैं क्योंकि वे कानूनी तौर पर स्वतंत्र होते हैं। सभी लोगों पर समान कानूनी प्रणाली लागू होती है, इससे व्यापारिक अनुबंध करना आसान हो जाता है, इस प्रकार इस प्रणाली के लक्षण अपनी पूर्ववती प्रणलियों से भिन्न हैं।

अब इस बात की चर्चा की जाएगी कि वेबर ने आर्थिक प्रणाली के तर्कसंगत होते चले जाने की कैसे व्याख्या की। तर्कसंगत पूँजीवाद का विकास कैसे हुआ? पिछले भाग में आपने पढ़ा कि कार्ल मार्क्स ने पूँजीवाद के विकास को कैसे समझाया। मार्क्स ने उत्पादन की प्रणाली में परिवर्तन के आधार पर इसकी व्याख्या की। क्या मैक्स वेबर भी मूलतः आर्थिक आधार पर ही जोर देता है? आधार पर इसकी व्याख्या की। क्या मैक्स वेबर भी मूलतः आर्थिक आधार पर ही जोर देता है? क्या वह सांस्कृतिक और राजनैतिक कारकों पर भी ध्यान देता है? अगले उप-भाग में यह बताया जाएगा कि किस तरह वेबर पूँजीवाद को एक जटिल अवधारणा मानता है और उसके अनुसार किसी एक कारक के आधार पर अथवा मशीनी या एक कारणीय संबध से इसे नही समझा जा सकता। तर्कसंगत पूँजीवाद के विकास के पीछे अनेक कारक हैं। इन सभी कारकों की आपसी क्रिया-प्रतिक्रिया से तर्कसंगत पूँजीवाद के लक्षण विकसित होते हैं। आइए अब वेबर द्वारा बताए गए आर्थिक, राजनैतिक तथा सांस्कृतिक अथवा धार्मिक कारकों पर नजर डालें।

11.3.5 तर्कसंगत पूँजीवाद के कारक

कुछ विद्यार्थी और विद्वानों के मन में आमतौर से यह धारणा है कि वेबर पूँजीवाद के विश्लेषण में आर्थिक कारकों की अनदेखी करता है। यह सही नही है। सच्चाई यह है कि वह आर्थिक कारकों पर मार्क्स के बराबर जोर नही देता परंतु आर्थिक कारकों के महत्व को

नकारता भी नहीं। अब पूँजीवाद के विकास में आर्थिक और राजनैतिक कारकों की भूमिका के बारे में वेबर के विचारों की संक्षिप्त चर्चा की जाएगी।

i) **आर्थिक कारकः** वेबर ने यूरोप में ''घरेलू कामकाज'' और व्यापार के बीच धीरे-धीरे आये अंतर का उल्लेख किया है। घरेलू इस्तेमाल के लिए छोटे पैमाने पर वस्तुओं के उत्पादन की जगह फैक्टरियों के बड़े पैमाने पर उत्पादन होने लगा। घरेलू कामकाज और कारखानों के काम के बीच अंतर बढ़ने लगा। परिवहन और संचार के विकास में अर्थव्यवस्था को तर्कसंगत रूप देने में मदद मिली। समान मुद्रा के चलन तथा बही-खाता प्रणाली से आर्थिक लेन-देन आसान हो गया।

ii) **राजनैतिक कारकः** आधुनिक पाश्चात्य पूँजीवाद का विकास नौकरशाही पर आधारित राज्य में सामंतवादी व्यवस्था टूटती है और इस तरह कर्तव्य होते हैं। नौकरशाही पर आधारित राज्य में सांमतवादी व्यवस्था टूटती है और इस तरह पूँजीवाद बाजार के लिए मुक्त भूमि और श्रम उपलब्ध होते हैं। ऐसी राज्य व्यवस्था विशाल क्षेत्र में शंतिपूर्वक राजनैतिक नियंत्रण बनाये रखने के अनुकूल होती है। फलस्वरूप व्यापरिक गतिविधियों को सुचारू रूप से चलाए जाने का अपेक्षाकृत शांतिपूर्ण राजनैतिक वातावरण मिल जाता है। तर्कसंगत नौकरशाही राज्य व्यवस्था में संपूर्ण रूप से विकसित हो जाती है। इस प्रकार की राज्य व्यवस्था में तर्कसंगत पूँजीवाद पनप सकता है। हमने पढ़ा कि वेबर किस तरह पूँजीवाद के विकास में आर्थिक तथा राजनैतिक कारकों के योगदान का विवरण करता है। हमने यह समझा कि कैसे घरेलू उत्पादन के स्थान पर फैक्टरी में उत्पादन मुद्रा का व्यापाक चलन, संचार के साधनों और तकनीकी की सहायता से नयी आर्थिक प्रणाली विकसित होती है। हमने यह भी देखा किस प्रकार नौकरशाही पर आधारित राज्य व्यापार के फलने-फूलने के लिए उपयुक्त राजनैतिक वातावरण तथा वैधानिक अधिकार और सुरक्षा प्रदान करता है।

लेकिन वेबर के अनुसार केवल यही व्याख्याएं पर्याप्त नहीं हैं। उसके अनुसार मानव-समुदाय अपनी परिस्थितियों को जिस रूप में समझता है, उन्हें जो अर्थ देता है, मानवीय व्यवहार उसी का प्रतिबिंब है। मानवीय व्यवहार के पीछे एक विशिष्ट नैतिकता तथा विश्व के प्रति एक विशिष्ट दृष्टिकोण होता है। इसी से मनुष्य की गतिविधियाँ प्रेरित होती है। सबसे प्राचीन पश्चिमी पूँजीपतियों के व्यवहार के पीछे कौन सी नैतिकता थी? परिवेश के प्रति उनकी धारणा क्या थी और वे इस परिवेश में अपनी भूमिका किस प्रकार से समझते थे?

वेबर ने आंकडों के आधार पर कुछ रोचक तथ्य प्रस्तुत किये हैं। उसके अनुसार उस समय के ज्यादातर व्यापारी विभिन्न पेशों के विशेषज्ञ और नौकरशाह प्रोटेस्टेंट धर्म के अनुयायी थे। इसके आधार पर वेबर का ध्यान एक महत्वपूर्ण प्रश्न की ओर आकर्षित हुआ, वह यह कि क्या प्रोटेस्टेंट मान्याताओं का आर्थिक व्यवहार पर कोई असर है? वेबर की प्रख्यात रचना द प्रोटेस्टेंट एथिक एंड द स्पिरिट ऑफ कैपिटलिज्म के बारें खंड 4 की इकाई 15 में विस्तृत चर्चा की जा चुकी है। आइए अब पहले सोचिए और करिए 2 को पूरा करें तथा फिर आर्थिक व्यवहार के निर्धारण में धार्मिक विश्वासों की भूमिका पर नजर डालें।

सोचिए और करिए 2

इस भाग (11.3) को ध्यानपूर्वक पढ़े। पूँजीवादी व्यवस्था के विकास में आर्थिक कारकों की भूमिका के बारे में वेबर और मार्क्स के विचारों के बारे में एक पृष्ठ की टिप्पणी लिखें। अगर संभव हो तो अपनी टिप्पणी की अध्ययन केन्द्र में अन्य विद्यार्थियों की टिप्पणियों से तुलना करें।

iii) **धार्मिक/सांस्कृतिक कारक** : प्रोटेस्टेंट नैतिकता का सिद्धांत सबसे पहले यह समझना आवश्यक है कि ''प्रोटेस्टेंट नैतिकता'' और पूँजीवादी प्रवृति (जो कि वेबर द्वारा विकसित आदर्श प्ररूप है) के बीच कोई यांत्रिक संबंध नही है, न ही प्रोटेस्टेंट नैतिकता पूँजीवाद के विकास का एकमात्र कारण है। वेबर के अनुसार, प्रोटेस्टेंट नैतिकता तर्कसंगत पूँजीवाद के विकास के विभिन्न स्त्रोतों में से एक है।

कल्विन धर्म प्रोस्टेंट पंथों में से एक है। वेबर ने इस पंथ में पूर्व-नियति की चर्चा की। पूर्व-नियति से तात्पर्य इस विश्वास से है कि कुछ लोगों को ईश्वर ने मुक्ति पाने के लिए चुना है। इसके परिणास्वरूप अनुयायियों ने धार्मिक ग्रंथों को महत्व देना बंद कर दिया। व्याकुलता और अकेलेपन की भावना पैदा की। प्रारंभिक प्रोटेस्टेट मत के अनुयायियों ने अपने पेशवर क्षेत्र में सफलता के प्रयास किए और ऐसी सफलता को ईश्वर द्वारा अपने ''चयन'' का संकेत माना। ईश्वरीय ''आहवान' (calling) की धारणा के फलस्वरूप अथक परिश्रम तथा समय के सदुपयोग पर जोर दिया गया। लोगों ने अत्यंत अनुशासित और सुसंगठित तरीके से जीना शुरू किया। इच्छा शक्ति के सुसंबद्ध तरीके के इस्तेमाल से निरंतर आत्म-नियंत्रण की प्रवृति पनपी जिससे व्यक्तिगत आचार के तर्कसंगत बनाने में मदद मिली। यह प्रवृति व्यापार के तरीकों में भी आयी। मुनाफे का इस्तेमाल विलासिता के लिए नही किया गया बल्कि व्यापार को और आगे बढ़ाने के उद्देश्य से मुनाफे का फिर निवेश किया गया। इस तरह, इहलौकिक आत्मसंयम (this wordly asceticism) जोकि प्रोटेस्टेंट विचारधारा का महत्वपूर्ण अंग है, रोजमर्रा के कामकाज को तर्कसंगत बनाने में सहायक हुआ। यह आत्मसंयम अथवा कड़ा अनुशासन और आत्मनियंत्रण साधु-सन्यासियों और पुरोहितों तक सीमित नही था। बल्कि यह सामान्य लोगों का भी जीवन-मंत्र बन गया जिन्होंने स्वंय को तथा अपने परिवेश को अनुशासित करने का प्रयास किया। परिवेश पर नियंत्रण रखना पूँजीवाद का एक महत्वपूर्ण विचार और लक्षण है। इस तरह प्रोटेस्टेंट नैतिकता और उसके दृष्टिकोण ने तर्कसंगत पूँजीवाद को स्वरूप देने में योगदान दिया।

11.3.6 तर्कसंगत पाश्चात्य समाज का भविष्यः ''लोहे का पिंजरा''

हमने देखा कि वेबर तर्कसंगति को पाश्चात्य सभ्यता को प्रमुख लक्षण माना है। आर्थिक प्रणाली, राजनैतिक प्रणाली, संस्कृति और रोज़मर्रा के कामकाज को तर्कसंगत बनाने के महत्वपूर्ण परिणाम होते हैं। चूंकि विज्ञान के जरिए लगभग सभी रहस्य, सारे सवाल सुलझाए जा सकते है। इसलिए मानव-जाति का विश्व के प्रति आदरयुक्त भय समाप्त हो जाता है। दैनिक जीवन को तर्कसंगत बनाने से लोग एक घिसे-पिटे तय शुदा तरीके से जीने को मजबूर हो जाते हैं। जीवन मशीनी, पूर्व निर्धारित, नियमबद्व और आकर्षणहीन हो जाता है। इससे मानवीय रचनात्मकता कम हो जाती है और लोगों में नीरस एंव नियमबद्व दिनचर्या को तोड़कर कुछ नया करने का उत्साह कम हो जाता है। मानव जाति अपने ही बनाए कारागार में फंस जाती है। इस ''लोहे के पिंजरे'' से निकलने का कोई रास्ता नहीं बचता। तर्कसंगत पूँजीवाद और इसकी सहयोगी तर्कसंगत नौकरशाही वाली राज्य-व्यवस्था जीवन की ऐसी पद्वति को स्थायी रूप देते है जिसमें मानवीय रचनात्मकता और साहस समाप्त हो जाते है। आस-पास के परिवेश का आकर्षण ही समाप्त हो जाता है। इससे मनुष्य मशीन जैसा बन जाता है। बुनियादी तौर से, यह अलगाव पैदा करने वाली प्रणाली है। (देखिये चित्र 11.1: भविष्य के बारे में वेबर की कल्पना)।

हमने पढ़ा कि वेबर ने तर्कसंगत पूँजीवाद जैसी जटिल व्यवस्था के विकास की कैसे विवेचना की। वेबर अपनी व्याख्या को आर्थिक और राजनैतिक कारणों मात्र तक सीमित नहीं रखता। वह इन कारकों की अनदेखी भी नहीं करता पर वह तर्कसंगत पूँजीवाद में निहित मनोवैज्ञानिक अभिप्रेरणा पर (psychological motivations) ज़ोर देता है। ये

अभिप्रेरणाएं परिवेश के बारे में बदलते दृष्टिकोण से पैदा हुई है। मानव-जाति ने स्वंय को प्रकृति के चक्र का असहाय शिकार न मानते हुए अपने मन पर और बाहरी दुनिया पर नियंत्रण पाने की नैतिकता को अपनाया है। इस बदले हुए दृष्टिकोण को बनाने में प्रोटेस्टेंट पंथों जैसे कि कल्विन धर्म के विचार सहायक थे। ईश्वरीय आव्हान और पूर्व-नियति की परिकल्पनाओं ने अनुयायियों को दुनिया में फलने-फूलने और इस पर नियंत्रण पाने की प्रेरणा दी। इससे एक ऐसी आर्थिक नैतिकता विकसित हुई जिसमें व्यक्तिगत जीवन और व्यापार को तर्कसंगत बनाने पर ज़ोर दिया गया। काम का बोझ केवल जरूरत न मान कर पवित्र कर्तव्य माना गया। ईश्वरीय आव्हान की धारणों के कारण अनुशासित श्रमिकों का दल निर्मित हुआ जिसने पूँजीवाद के विकास में अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। इस तरह, वेबर ने अनेक स्तरों पर पूँजीवाद का विश्लेषण किया। उसने बदलती भौतिक और राजनैतिक स्थितियों के साथ-साथ बदलते जीवन-मूल्यों तथा विचारों के आधार पर यह विश्लेषण किया।

वेबर भविष्य की निराशापूर्ण तस्वीर पेश करता है। आर्थिक-राजनैतिक ढॉचे में तर्कसंगति से जीवन एक नीरस दिनचर्या में ढल जाता है। मानव-जाति के सामने प्रकृति के सभी रहस्य खुल जाते है, अतः जीवन का रोमांच तथा आकर्षण समाप्त हो जाता है इस तरह मानव-जाति अपने ही बनाये ''लोहे के पिंजरे''' में फंस जाती है।

बोध प्रश्न 3

i) निम्नलिखित प्रश्नों में प्रत्येक प्रश्न का तीन पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

क) तर्कसंगत पूँजीवाद के विकास के लिए तर्क-विधिक व्यवस्था क्यों जरूरी है?

.....

.....

.....

.....

ख) पूर्व-नियति की धारणा से प्रोटेस्टेंट धर्म के लोगों का काम किस प्रकार प्रभावित हुआ?

.....

.....

.....

.....

.....

2) निम्न वाक्यों में से ''सही'' या ''गलत'' बताइए।

क) वेबर के अनुसार पूँजीवाद के उदय का सबसे महत्वपूर्ण कारण नौकरशाही पर आधारित राज्य का पनपना है। सही/गलत

ख) पूर्व नियति की धारणा ने ज्यादातर प्रोटेस्टेंट धर्म के लोगों को प्रार्थना और धर्मग्रंथों के प्रति समर्पित जीवन बिताने के लिए प्रेरित किया। सही/गलत

ग) वेबर के अनुसार तर्कसंगत पाश्चात्य समाज ने मानव जाति को नीरस दिनचर्या से मुक्ति दिलाई। सही/गलत

11.4 मार्क्स और वेबर के विचारों की तुलना

हमने पूँजीवाद के बारे में कार्ल मार्क्स और मैक्स वेबर के विचारों का अध्ययन किया। इन दोनों के दृष्टिकोण में आपने अनेक समानताएं और अंतर पाये होंगे। आइए, इन समानताओं और अंतर का अब संक्षेप में विवेचन करें।

11.4.1 दृष्टिकोण में अंतर

इकाई 18 में आपने इन दोनों चिंतकों की विचार पद्वतियों के अंतर के बारे में पढ़ा। कार्ल मार्क्स अपने विश्लेषण में ''समाज'' को इकाई मानता है। इस दृष्टिकोण को हमने ''सामाजिक यथार्थवाद'' का नाम दिया है इसके अनुरूप मार्क्स पूँजीवाद को समाज का एक ऐतिहासिक चरण मानता है।

दूसरी ओर वेबर समाज का अध्ययन उन व्याख्यात्मक अर्थों के संदर्भ में करता है। जिनके द्वारा कर्त्ता या व्यक्ति अपने परिवेश को समझते हैं। वह सामाजिक स्थितियों की व्याख्या कर्त्ता के दृष्टिकोण के संदर्भ में करता है। व्याख्यात्मक दृष्टिकोण के आधार पर वह सामाजिक यथार्थ को समझने का प्रयास करता है। जैसा कि इस इकाई में बताया गया है वेबर व्यक्तियों की मनोवैज्ञानिक अभिप्ररेणाओं पर ध्यान केन्द्रित कर पूँजीवाद का अध्ययन करता है। इसके लिए वह लोगों की विश्वदृष्टि की और उनके कार्यकलापों के साथ जुड़े अर्थ की व्याख्या करता है।

11.4.2 पूँजीवाद का उदय

मार्क्स पूँजीवाद के उदय को उत्पादन की बदलती हुई प्रणाली के संदर्भ में देखता है। उसके अनुसार, आर्थिक प्रणाली या भौतिक क्षेत्र वह मूलभूत ढांचा अथा अघोसंरचना (infrastructure) है जिससे संस्कृति, धर्म, राजनीति जैसी उप-प्रणालियों अर्थात् अधिसंरचना (Super structure) का स्वरूप निर्धारित होता है। उसके अनुसार, सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन मूलतः आर्थिक परिवर्तन होता है। इस तरह, पूँजीवाद के उदय को उत्पादन के साधनों में बदलाव के आधार पर समझाया गया है। इस बदलाव का कारण है पिछले ऐतिहासिक चरण अर्थात् सामंतवाद का विरोधाभ्यास।

वेबर का विश्लेषण कहीं अधिक जटिल है जैसा कि आपने पढ़ा वह तर्कसंगत पूँजीवाद के उदय में आर्थिक कारणों की अनदेखी नहीं करता। लेकिन वह व्यक्तियों के दृष्टिकोण, अभिप्रेरणाओं और कार्यों के एवम् उनकी व्याख्या को महत्वपूर्ण मानता है। व्यक्तियों के दृष्टिकोण, नैतिक मूल्यों, विश्वासों और भावनाओं से उनके कार्य निर्देशित होते हैं और इन कार्यों में आर्थिक कार्य भी शामिल है। इसलिए तर्कसंगत पूँजीवाद के उदय के कारणों को समझने के लिए वेबर नैतिक मूल्यों की उस प्रणाली पर ध्यान देता है, जिसकी वजह से तर्कसंगत पूँजीवाद पनपा। उसकी पुस्तक द प्रोटेस्टेंट एथिक एंड द स्पिरिट ऑफ कैपिटलिज़्म में यही दृष्टिकोण अपनाया गया है।

कुछ लोगों का विचार है कि वेबर के विचार मार्क्स से एकदम विपरीत है। उनका कहना है कि मार्क्स आर्थिक प्रणाली धर्म से ज़्यादा महत्वपूर्ण मानता है जबकि वेबर धर्म को आर्थिक प्रणाली से ज्यादा महत्व देता है। मार्क्स और वेबर के विचारों की तुलना का यह सतही और सपाट तरीका है। यह कहना ज्यादा उचित है कि वेबर ने अपने विश्लेषण में नये आराम और नये दृष्टिकोण शामिल करके मार्क्स के विचारों को पूर्णता दी ताकि पूँजीवाद जैसी जटिल धारणा के विविध पक्षों का ज्यादा गहराई से अध्ययन हो सके।

मार्क्स तथा वेबर के विचारों की तुलना हेतु सोचिए और करिए 3 को पूरा करें।

सोचिए और करिए 3

मार्क्स आर्थिक प्रणाली को धर्म से ज्यादा प्रमुखता देता है जबकि वेबर धर्म को आर्थिक प्रणाली से ज्यादा महत्वपूर्ण मानता है। क्या आप इस बात से सहमत है? साथी विद्यार्थियों से भी विचार-विमर्श करें और अपने विचारों के समर्थन में एक पृष्ठ की टिप्पणी लिखें।

11.4.3 पूँजीवाद के परिणाम और पूँजीवादी व्यवस्था को बदलने का उपाय

कार्ल मार्क्स के अनुसार पूँजीवादी व्यवस्था श्रमिकों के शोषण, अमानवीय और समाज के अलगाव की प्रतीक है। यह असमानता पर आधारित है और इसका बिखर कर नष्ट हो जाना तय है। इस व्यवस्था का पतन इसके अपने ही अंतर्विरोधों से होगा। सर्वहारा वर्ग क्रांति करेगा और मानवीय इतिहास का नया चरण यानी साम्यवाद का उदय होगा। वेबर भी मानता है कि तर्कसंगत पूँजीवाद मूलतः मानवीय समाज में अलगाव, पैदा करता है। तर्कसंगत पूँजीवाद और नौकरशाही तर्कसंगत राज्य-प्रणाली साथ-साथ चलते है। इससे मानवीय जीवन एक ढर्रे पर आ जाता है, लोग समाज और विश्व से विरक्त हो जाते है। लेकिन भविष्य के प्रति वेबर का दृष्टिकोण निराशावादी है। (देखिए चित्र 11.1ः भविष्य के बारे में वेबर की कल्पना) मार्क्स के विपरीत वह मानता है कि क्रांति होने की या व्यवस्था के नष्ट हो जाने की कोई संभावना नहीं है। उसके अनुसार पूँजीवाद की मूलभूत धारणा तर्कसंगति आज की दुनिया की तमाम मानवीय गतिविधियों के लिए बहुत जरूरी है। विज्ञान और तकनीकी की प्रगति, प्रकृति की शक्तियाँ तथा विश्व पर नियंत्रण करने की मानवीय इच्छा ऐसी प्रक्रियाएं है, जिन्हें पीछे नहीं लौटाया जा सकता। इसलिए क्रांतियों और विद्रोहों से समाज की प्रगति की दिशा में मूलभूत परिवर्तन नहीं लाया जा सकता।

मार्क्स पूँजीवाद की तर्कहीनता और विरोधों पर अधिक ध्यान देता है। उसके अनुसार तर्कहीनता और विरोधों के कारण परिवर्तन आता है। वेबर तर्कसगंति को अधिक महत्व देता है। यही तर्कसगंति लोगों को ''लोहे के पिंजरे'' में कैद कर देती है।

इस तरह, पूँजीवाद के बारे में मार्क्स और वेबर के दृष्टिकोणों में अंतर है। मार्क्स समाज के ऐतिहासिक चरणों के आधार पर पूँजीवाद का अध्ययन करता है। पूँजीवाद पिछले चरण के अंतविरोधों का परिणाम है और इसके साथ ही उत्पादन की नयी प्रणाली जन्म लेती है।

वेबर भी आर्थिक कारकों पर ज़ोर देता है। लेकिन पूँजीवाद की उसकी व्याख्या ज्यादा जटिल है। अपनी समाजशास्त्रीय पद्वति अर्थात् अंतर्दृष्टि के अनुरूप वह व्यक्तिपरक अर्थों, मूल्यों और मान्यताओं पर ज़ोर देता है। दोनों ही विचारक मानते हैं कि मानवीय समाज के लिए पूँजीवाद का प्रभाव हानिप्रद है परन्तु भविष्य के प्रति दोनों के दृष्टिकोण में बहुत अंतर है। मार्क्स क्रांति तथा परिवर्तन का संदेश देता है पर वेबर ऐसी कोई उम्मीद नहीं रखता है। मार्क्स के अनुसार, पूँजीवाद का आधार तर्कहीनता है। वेबर के राय में, पूँजीवाद तर्कसंगति का ही परिणाम है। यही दोनों के विचारों में अंतर का मुख्य मुद्दा है। अब इकाई के अंत में बोध प्रश्न 4 को पूरा करे।

बोध प्रश्न 4

i) निम्नलिखित वाक्यों के खाली स्थानों में उचित शब्द लिखिए।

क) मार्क्स ..... को अपने विश्लेषण की इकाई मानता है इस दृष्टिकोण को ..... कहते है।

ख) वेबर सामाजिक स्थिति को ..... के आधार पर समझाने का प्रयास करता है।

ग) वेबर के अनुसार पूँजीवाद के मूल में तर्कसंगति निहित है, पर मार्क्स की राय में इसका आधार ..... तथा ..... है।

घ) मार्क्स की राय में आर्थिक प्रणाली वह आधार अथवा ..... है, जिससे ..... का स्वरूप निर्धारित होता है।

ii) मार्क्स और वेबर ने पूँजीवाद के उदय के जो कारण बताए, उनकी तुलना करें। उत्तर छः पंक्तियों में दीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

11.5 सारांश

इस इकाई में हमने पूँजीवाद के संदर्भ में मार्क्स और वेबर के दृष्टिकोण के बारे में पढा। इन दोनों विचारकों के जीवन-काल में पूँजीवादी व्यवस्था विकसित हुई। पहले भाग में, हमने मार्क्स के प्रमुख विचारों पर चर्चा की। हमने पढ़ा कि कैसे मार्क्स ने पूँजीवाद को मानवीय इतिहास के एक चरण के रूप में देखा। हमने टॉम बॉटोमार द्वारा बताए गए पूँजीवाद के लक्षणों का विवरण किया। हमने मार्क्स के वर्गों के ध्रुवीकरण के विचार का भी अध्ययन किया जिसके परिणामस्वरूप सर्वहारा क्रांति होगी और पूँजीवाद का विनाश होगा।

अगले भाग में, हमने पूँजीवाद के बारे में मैक्स वेबर के विचारों का विस्तृत अध्ययन किया। हमने देखा कि तर्कसंगति किस प्रकार पाश्चात्य सभ्यता के हर क्षेत्र में छायी हुई है। हमने आर्थिक प्रणाली की तर्कसंगतिकरण की प्रक्रिया का अध्ययन किया जिससे तर्कसंगत पूँजीवाद पनपा। हमने परंपरागत और तर्कसंगत के अंतर को समझा। आर्थिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक, धार्मिक कारकों के आधार पर पूँजीवाद के उदय के बारे में वेबर के विचारों पर चर्चा की गई। फिर हमने पाश्चात्य सभ्यता के भविष्य के प्रति वेबर के विचारों की संक्षिप्त चर्चा की।

अंतिम भाग में, हमने दोनों विचारकों की धारणाओं की संक्षेप में तुलना की। हमने यह भी पढा कि पूँजीवाद के प्रति दोनों के दृष्टिकोण तथा इसके पनपने के कारणों तथा भविष्य के बारे में दोनों के विचारों में क्या-क्या अंतर है। निष्कर्ष रूप में हमने देखा कि दोनों ही पूँजीवाद को अलगाव पैदा करने वाली व्यवस्था मानते हैं।

11.6 बोध प्रश्नों का उत्तर

बोध प्रश्न 1

i) क) गलत

ख) गलत

ग) गलत

घ) गलत

च) गलत

ii) क) मार्क्स के अनुसार सर्वहारा की क्रांति से नयी सामाजिक व्यवस्था ''साम्यवाद'' का जन्म होगा। श्रमिक उत्पादन के साधनों के स्वामी और नियंत्रक होगे। इस प्रकार, पिछले चरणों के अंतर्विरोध दूर हो जाएंगे।

ख) पूँजीवादी चरण में वस्तुओं का विनिमय मुद्रा में होता है। पूँजीवादी प्रणाली में मुद्रा ही समाज को बांधने वाली शक्ति है। इसलिए बैंकों तथा वित्तीय संस्थानों की भूमिका महत्वपूर्ण हो जाती है।

ग) पूँजीवादी व्यवस्था में बहुत अधिक असमानता होती है। पूँजीपति उत्पादन के साधनों के स्वामी और नियंत्रक होते हैं जबकि श्रमिक अपनी श्रम-शक्ति बेचने को मजबूर होते हैं। इन दो वर्गों के बीच अंतर बढ़ता जाता है और ध्रुवीकरण की स्थिति आ जाती है।

बोध प्रश्न 2

i) तर्कसंगतिकरण से वेबर का अभिप्राय दुनिया और मानवीय जीवन-दोनों के संगठन से है। बाहरी दुनिया पर नियंत्रण किया जाना था और मानवीय जीवन को ऐसे व्यवस्थित किया जाना था ताकि ज्यादा से ज्यादा कुशलता और उत्पादकता बढ़े। कुछ भी प्रकृति या भाग्य के भरोसे नहीं छोड़ा गया।

ii) परंपरागत पूँजीवाद में व्यापार को जुआ समझा जाता था। बिक्री की वस्तुएँ सीमित और अक्सर बहुत कीमती होती थी। खरीदार बहुत कम थे। विदेशी व्यापार जोखिम भरा था। व्यापार में भी जोखिम और अनिश्चितता थी।

बोध प्रश्न 3

i) क) तर्कविधिक व्यवस्था से तात्पर्य सभी के लिए समान वैधानिक प्रणाली से है। इसमें व्यक्तिगत कर्तव्यों और अधिकारों को लिखित रूप में संहिताबद्व किया जाता है। इससे व्यापारिक कारोबार करना आसान हो जाता है और पूँजीवाद के विकास में मदद मिलती है।

ख) पूर्व-नियति की धारणा से अनुयायियों के मन में बड़ी व्याकुलता और असुरक्षा पैदा हुई। उन्होंने अपने ईश्वरीय चयन के संकेतों को, प्रार्थना और धार्मिक अनुष्ठानों में नहीं, बल्कि पेशे की सफलता में तलाशा। दुनिया में सफलता के लिए उन्होनें कड़ी मेहनत की ओर अतिरिक्त लाभ को फिर व्यापार में ही लगाया ताकि उत्पादन और बढ़ाने में इसका इस्तेमाल हो सके।

ii) क) गलत

ख) गलत

ग) गलत

बोध प्रश्न 4

i) क) समाज, सामाजिक यथार्थवाद

ख) व्यक्तिपरक अर्थ

ग) तर्कहीनता, अंतर्विरोध

घ) अधोसंरचना, अधिसंरचना

ii) कार्ल मार्क्स पूँजीवाद के उदय की व्याख्या उत्पादन की बदलती प्रणाली के संदर्भ में करता है। पिछली प्रणाली, अर्थात् सांमतवाद के अंतर्विरोधों से नयी आर्थिक प्रणाली, अर्थात् पूँजीवाद का उदय होता है। इस प्रकार मार्क्स की व्याख्या मूलतः आर्थिक आधार पर थी। वेबर ने आर्थिक कारकों की अनदेखी तो नहीं की, पर साथ ही उसने राजनैतिक और धार्मिक कारकों की भी चर्चा की। उसकी राय में पूँजीवाद के विकास को समझने के लिए मनोवैज्ञानिक अभिप्रेरणाओं तथा व्यक्तिगत दृष्टिकोण को भी जानना जरूरी है। इस तरह वेबर का विश्लेषण बहु-स्तरीय तथा ज्यादा जटिल है।

11.7 संदर्भ

बॉटोमोर, टॉम, (सं) 1973. डिक्शनरी ऑफ मार्क्सिस्ट थॉट. ब्लैकवेलः ऑक्सफोर्ड

फ्रॉएंड, जूलियन. 1972 द सोशियोलॉजी ऑफ मैक्स वेबर पेंगुइनः लंदन

मार्क्स, कार्ल, और एंगल्स, एफ. 1938 एफ. 1938. जर्मन आइडियॉलोजी. भाग I और II लॉरेन्स एण्ड विसहॉर्टः लंदन

वेबर मैक्स, 1958. द प्रॉटेस्टेंट एथिक एण्ड द स्पिरिट ऑफ कैपिटलिज्म स्क्रिबरनः न्यूयार्क

वेबर मैक्स, 1958. द रैशनल एण्ड सोशल फाउँडेशन्स ऑफ म्यूजिक सदर्न इलिनॉय यूनिवर्सिटी प्रेसः ग्लेनको

दर्खाइम, एमिल, 1982. समाजशास्त्री पद्धति के नियम. अनुवादी हरिश्चंद्र उप्रेती. राजस्थान हिंदी ग्रंथ. अकादमीः जयपुर

इकाई 12 सामाजिक परिवर्तन एवं रूपांतरण*

संरचना

12.0 उद्देश्य

12.1 प्रस्तावना

12.2 सामाजिक परिवर्तन की अवधारणा

12.3 सामाजिक परिवर्तन के सिद्धांत

12.4 सामाजिक परिवर्तन के घटक

12.5 सामाजिक परिवर्तन की दर

12.6 सामाजिक परिवर्तन का प्रभाव

12.7 सारांश

12.8 संदर्भ

12.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

12.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन में आप समझ सकेंगे :

- सामाजिक परिवर्तन तथा सामाजिक रूपांतरण की अवधारणा;
- सामाजिक परिवर्तन के विभिन्न सिद्धांत;
- सामाजिक परिवर्तन के औपचारिक घटक;
- सामाजिक परिवर्तन की गति;
- सामाजिक परिवर्तन का मानव समाज पर प्रभाव; तथा
- सामाजिक परिवर्तन तथा भविष्य।

12.1 प्रस्तावना

इस इकाई में आपको सामाजिक बदलाव तथा सामाजिक रूपांतरण के बारे में समुचित जानकारी प्राप्त होगी। इसके लिए जरूरी है कि हम यह जान लें कि सामाजिक परिवर्तन व रूपांतरण की अवधारणा आखिर होती क्या है। इसके साथ ही साथ सामाजिक परिवर्तन के विभिन्न सिद्धांतों, घटकों तथा सामाजिक परिवर्तन के प्रभावों व पद्धतियों के बारे में भी जानकारी प्राप्त होगी। सामाजिक परिवर्तन एक सतत प्रक्रिया है जो सबके जीवन में घटित होती रहती है। इसका कारण यह है कि जिस समाज में हम रहते हैं वह लगातार बदलता रहता है। सामाजिक रूपांतरण की अवधारणा सामाजिक परिवर्तन से सीधी जुड़ी हुई है। कभी कभी दोनों को एक ही अर्थ में लिया जाता है, जबकि दोनों में मौलिक अंतर है। परिवर्तन की जटिलताओं को समझने में और उसकी व्याख्या करने में समाजशास्त्र हमारी मदद करता है।

*यह इकाई आर. वाशुम के द्वारा लिखी गयी है।

12.2 सामाजिक परिवर्तन एवं सामाजिक रूपांतरण की अवधारणा

सामाजिक परिवर्तन को अनेक रूपों में समझाया गया है तथा अनेक प्रकार से उसकी व्याख्या की गई है। प्रायः यह माना जाता है कि सामाजिक जीवन में उल्लेखनीय परिवर्तन समय-समय पर होते रहते हैं। यह कभी-कभी लगातार चलते रहते हैं, कभी अल्प अवधि के बाद तथा अल्प अवधि के लिए होते हैं और कभी-कभी दुहराये जाते रहते। सामाजिक परिवर्तनों की व्याख्या किसी सामाजिक संगठन और अथवा सामाजिक संरचना तथा समाज के कार्यों तथा उनके विभिन्न रूपों में होने वाले उल्लेखनीय बदलाव अथवा नवीनीकरण को सामाजिक परिवर्तनों के सुधार संज्ञा दी जाती है। सामाजिक परिवर्तन की उक्त परिभाषा सामाजिक संबंधों, सामाजिक पद्धतियों, क्रियाओं तथा अंतर क्रियाओं, संबंधों के नियमों और उनकी विशेषताओं, मूल्यों, प्रतीकों तथा सांस्कृतिक उत्पादों के विभिन्न तरीकों में घटित होने वाले विशिष्ट परिवर्तनों के विविध पहलुओं पर विशेष रूप से जोर देती हैं। सामाजिक परिवर्तन की अवधारणा समय के साथ संस्कृति के भौतिक व अभौतिक दोनों ही पहलुओं में आने वाले बदलावों को महत्व देती है। ये परिवर्तन समाजों के अंदर भी घटित होते हैं और बाहरी दबावों के कारण भी, इसके परिणामस्वरूप समाज का रूप बहुत बदल जाता है।

इस प्रकार सामाजिक रूपांतरण का समाज में होने वाले परिवर्तनों से सीधा और गहरा संबंध है। सामाजिक विज्ञानों में सामाजिक रूपांतरण शब्द का प्रयोग हाल के कुछ दशकों से ही देखने में आया है। इस अर्थ में यह अपेक्षाकृत नया है। सच कहें तो सामाजिक बदलाव का क्रांतिकारी रूप ही सामाजिक रूपांतरण है। यह समाज में दर्ज किया जाने वाला एक अधिक व्यापक और अधिक गहरा बदलाव है जिसका स्वरूप अलग दिखता है, इसीलिए इसे क्रांतिकारी माना जाता है। इसके फलस्वरूप जीवन के तौर-तरीके एक छोटी सी समयावधि में ही विशेष रूप से बदल जाते हैं। जबकि सामाजिक परिवर्तन मंथर गति से थोड़ा-थोड़ा सामाजिक ढांचों और सामाजिक संगठनों जैसे कि पारिवारिक संरचनाओं, विवाह की रस्मों तथा शैक्षिक संस्थानों आदि में निरंतर घटित होता रहता है। दूसरे शब्दों में कहें तो सामाजिक रूपांतरण समाज में होने वाला आधारभूत परिवर्तन है जब सामाजिक बदलाव समय के साथ धीमी गति से लगातार होता रहता है। आगे व्याख्या करते समय हम सामाजिक परिवर्तन को धीमी गति से होने वाले बदलाव तथा तीव्र गति से होने वाले क्रांतिकारी बदलाव (सामाजिक रूपांतरण) दोनों ही सन्दर्भों में इस्तेमाल करेंगे।

12.3 सामाजिक परिवर्तन के सिद्धांत

सामाजिक परिवर्तन तथा सामाजिक रूपांतरण के अनेक सिद्धांत हैं :

1) विकासात्मक सिद्धांत अथवा उद्विकासीय सिद्धांत;
2) चक्रात्मक सिद्धांत अथवा चक्रीय सिद्धांत;
3) संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक सिद्धांत;
4) वर्ग संघर्ष का सिद्धांत।

1) **उद्विकासीय सिद्धांत**

सामाजिक परिवर्तन का विकास सिद्धांत अनेक सिद्धांतों का समूह है। इसमें शामिल सभी सिद्धांत अन्तर्सम्बन्धित हैं। उद्विकासीय सिद्धांत की प्रमुख अवधारणा यह है कि सभी मानव समाजों में सदा परिवर्तन होते रहते हैं। सभी परिवर्तनों की प्रवृति लगभग एक जैसी ही होती है। अपने उद्गम से विकास के चरण की ओर बढ़ते जाना या फिर

यह कहें कि सरल और आरंभिक दशा से जटिल एवं आधुनिक अवस्था की ओर बढ़ते जाना। उद्विकासीय सिद्धांत यह भी बताता है कि विकासमूलक परिवर्तन चरम अवस्था में पहुंचने के बाद चरम बिन्दु पर पहुँच जाता है। यह सिद्धांत बताता है कि समाज परिवर्तनशील है तथा यह सतत विकास करते जाना इसकी मूल प्रवृति है। उद्विकासीय सिद्धांत को दो मुख्य श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है- (क) पारंपरिक उद्विकासीय सिद्धांत (ख) नव उद्विकासीय सिद्धांत।

क) **पारंपरिक उद्विकासीय सिद्धान्त**

इन सिद्धांतों का प्रादुर्भाव मानवविज्ञानियों तथा समाजशास्त्रियों के प्रयासों से 19वीं शताब्दी के आते आते हो चुका था। यद्यपि इन सभी विद्वानों की धारणाओं में एकरूपता नहीं है, फिर लगभग सभी विचार यह मानते हैं कि विकासमूलक परिवर्तन एकरेखीय एवं एकल दिशागामी होते हैं। जिस प्रकार एककोशिकीय जीव से विकसित होते-होते सभी जटिल संरचना वाली मानव देह अवस्था तक पहुंचता है, उसी प्रकार समाज आदि अवस्था से आधुनिकतम अवस्था तक पहुंचने के लिए सतत विकसित होता रहता है। समाज अस्तित्व में आते ही वृद्धि करने लगते हैं। समाज में रहने वाले लोग समय के साथ-साथ बदलते हुए विकास के अनेक आयाम लांघते हुए उसी प्रकार विशिष्ट हो जाते हैं जैसे करोड़ों देह कोशिकाएं मिलकर विशिष्ट देह प्रणाली का निर्माण करती हैं। उद्विकासीय सिद्धांतों के अधिष्ठाताओं में प्रमुख हैं अगस्तकॉम्ट, हरबर्ट स्पेंसर, ई.बी.टॉयलर, एच.जे.एस.मेन, जे. एफ.मैक लेनन और ऐस.जे.जी .फ्रेजर (ब्रिटिश उद्विकासीय स्कूल से), लेविस हेनरी मॉर्गन (अमेरिकी उद्विकासीय स्कूल से), और जे.जे.बाचोफेन, अडोल्फ बास्टियन और फर्डीनांड टोनीज ख्फर्डीनांड टोनीज, (जर्मन उद्विकासीय स्कूल से) इन सभी विचारकों ने मानव समाज की विकासमूलक प्रवृत्तियों पर उल्लेखनीय कार्य किए हैं।

ऑगस्ट कॉम्ट का मानना हैं कि सभी समाज विकास की तीन अवस्थाओं से गुजरते हैं– धार्मिक स्तर, आध्यात्मिक स्तर, प्रत्क्ष्यात्मक अथवा तार्किक स्तर।

हरबर्ट स्पेंसर डार्बिन की जैविक विकास के सिद्धांत में विश्वास रखता है और कहता है कि मानव समाज विकास के अनेक अवस्थाओं से गुजरते हुए छोटे-छोटे मानव समूहों तथा सरल सामाजिक ढांचों से निकलकर आधुनिक काल में मौजूद विशाल व जटिल सामाजिक संरचनाओं तक पहुंचा है। इसे सामाजिक डार्विनवाद भी कहा जाता है। ई. बी. टॉयलर के अनुसार सारी दुनिया के सभी मनुष्यों की सोच अपने अस्तित्व एवं विकास के मामले में लगभग एक जैसी होती है। इसे मानसिक एकता कहा जाता है। सभी मनुष्य एक जैसी विकासात्मक अवस्थाओं से गुजरते हैं। जिन्हें निम्न तीन अवस्थाओं में समझा जा सकता है– सर्वात्मकवाद, बहुदेववाद, एकेथ्वरवाद। लेविस हेनरी मॉर्गन का मानना है कि मानव समाज अपनी विकास यात्रा के दौरान तीन अवस्थाओं से गुजरता है और अंततः तकनीकी नवीनीकरण की अवस्था तक पहुंचा है। ये तीन अवस्थाएं हैं – जंगलीपन, बर्बर अवस्था, और सभ्य अवस्था।

1) **नव उद्विकासीय विचारक** – सुप्रसिद्ध समाजशास्त्री बी. गार्डन. चिल्ड,जूलियन स्टीवर्ड तथा लेस्ली ह्वाइट ने उद्विकासीय सिद्धांतों में बीसवीं शताब्दी में संशोधन किये। इसके बाद उद्विकासीय सिद्धांतों का जो स्वरूप सामने आया वह पूरी तरह सह प्रमाण, सुव्यवस्थित तथा तर्क संगत था। उन्होंने अपने सिद्धांतों को पारंपरिक उद्विकासीय सिद्धांतों से अलग करने के लिए उन्हें नवीन उद्विकासीय सिद्धांत की संज्ञा दी और स्वयं को नव उद्विकासीय विचारक घोषित किया।

बी. गार्डन, चिल्ड ने अपने सिद्धांतों को तकनीकी विकास से जोड़ा। उन्होंने बताया कि संस्कृति का विकास चार प्रमुख अवधियों से गुजरता है। कांस्य युग तथा लौह युग उनके उद्विकासीय सिद्धांत के अनुसार विकास की प्रकृति रेखीय है जिसे वैश्विक उद्विकासवाद भी कहा जाता है।

लेस्ली हाइट सांस्कृतिक विकास को मनुष्य की ऊर्जा का समुचित प्रबंधन मानते हैं। उसकी सांस्कृतिक विकास का मौलिक सिद्धांत यह है कि संस्कृति का विकास मनुष्य के द्वारा होता ही तब है जब मनुष्य की प्रति वर्ष ऊर्जा संचयन की मात्रा में वृद्धि होने लगती है। मनुष्य की तकनीकी दक्षता का अर्थ है उसका अपनी ऊर्जा को अधिक से अधिक काम में लगाना। दोनों घटक ऊर्जा संचयन एवं तकनीकी विकास साथ-साथ चलते रहते हैं और दोनों में लगातार वृद्धि होती रहती है। नवीन उद्विकासवादी जूलियन स्टीवर्ड ने बहुरेखीय विकास के सिद्धांत को जन्म दिया। एकरेखीय तथा वैश्विक सिद्धांत के अस्तित्व को स्वीकार करते हुए उन्होंने अपने सिद्धांत की घोषणा की। बहुरेखीय विकास से स्टीवर्ड का तात्पर्य यह है कि विभिन्न सांस्कृतिक क्षेत्र तथा सांस्कृतिक उपक्षेत्रों में सांस्कृतिक विकास की अवस्थाओं की पद्धतियां भिन्न-भिन्न होती हैं।

मार्शल डी सहलिंस तथा एलमन सर्विस ने विशिष्ट तथा सामान्य विकास की अवधारणा को जन्म दिया और इसके द्वारा विकास के विभिन्न सिद्धांतों के बीच सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास किया। इन सिद्धांतों का मुख्य दावा था कि विकास की धारा को जैविक पक्ष तथा सांस्कृतिक पक्ष दोनों दिशाओं की ओर साथ-साथ प्रवाहित किया जा सके।

2) **चक्रीय सिद्धांत**

चक्रीय सिद्धांत एक लंबी समयावधि में बार-बार बदलती परिस्थितियों, घटित होती घटनाओं, बदलते रूपों तथा पहनावे की शैलियों से विशेष रूप से सरोकार रखता है। यद्यपि विभिन्न समयावधियों में परिवर्तन के स्वरूप अलग-अलग देखे गए हैं। चक्रीय सिद्धांतकार मानते हैं कि समाज परिवर्तन के अनेक दौरों से गुजरते हैं। विभिन्न समयावधियों में परिवर्तन के विभिन्न दौर देखे जा सकते हैं। कोई भी परिवर्तन समाज को पूर्णावस्था में नहीं पहुंचा पाता है। देखने में यह आया है कि बदलाव का यह दौर व्यक्तियों, समाजों को आगे चलकर उसी स्थिति में ला खड़ा करता है जहां से बदलाव का दौर शुरू हुआ था। इसके बाद फिर उसी प्रकार परिवर्तन का अगला चक्र शुरू हो जाता है। ए एल क्रोबरचक्रीय पद्धति का शास्त्रीय विश्लेषण पश्चिमी देशों में स्त्रियों की कपड़ों में आने वाले परिवर्तनों को केंद्र में रखकर करता है। क्रोबरने देखा कि पश्चिमी देशों में स्त्रियां लंबे समय तक एक खास तरह के कपड़े पहनती हैं और उसके बाद अलग तरह के। इनमें भी एक अवधि के बाद परिवर्तन आ जाता है। इस प्रकार के चक्रीय क्रम में उनके कपड़ों से जुड़ी रुचियों में बदलाव आते रहते हैं जो बार-बार एक अवधि के बाद दोहराएं जाते हैं। ओसवाल सपेंजलर का विचार है कि सभ्यताएं उत्पन्न होती हैं, फिर विकसित होती हैं और एक अवधि के बाद उनमें क्षरणा की प्रक्रिया आरंभ हो जाती है। उदाहरण के लिए रोमन साम्राज्य बना, बहुत ही शक्तिशाली हुआ और फिर धीरे-धीरे उसका पतन हो गया। इसी चक्र से ब्रिटिश साम्राज्य भी गुजरा। पिटीरिम सोरोकिन का मानना था कि सभी महान सभ्यताएं तीन सांस्कृतिक क्रम से गुजरती हैं जो पूरी तरह चक्रीय होते हैं। (1) विचारात्मक संस्कृति, आस्था और रहस्य उद्घाटन पर आधारित समाज (2) आदर्शवादी संस्कृति, अनुभववाद तथा अलौकिक विचारों को मानने वाला समाज (3) अनुभवों के आधार पर चलने वाला

समाज। उसका यह भी मानना था कि सभी समाज अनिवार्य रूप से क्षरित नहीं होते बल्कि विकास की विभिन्न अवस्थाओं से गुजरते हुए अपनी आवश्यकताओं के अनुसार चक्र बदलते रहते हैं।

महान सभ्यताओं का अध्ययन करने के बाद अर्नाल्ड टायनबी इस नतीजे पर पहुंचे थे कि सभ्यताएं जन्मती हैं, विकसित होती हैं, क्षरित होती हैं और मर जाती हैं। उनका विश्वास था कि वर्तमान में पश्चिम सभ्यता अब क्षरण की अवस्था की ओर जा रही है। विल्फ्रेडो पीएर्टो ने राजनैतिक कुलीनों का अध्ययन किया था और उसके आधार पर कुलीनों ने चक्रीय क्रम में बदलने के बारे में अपने विचार प्रकट किए। उन्होंने राजनीतिक कुलीनों को दो श्रेणियों में बांटा एक लोमड़ी की प्रवृत्ति वाले राजनैतिक कुलीन और दूसरे शेर की प्रवृत्ति वाले राजनैतिक। इन दोनों की राजनैतिक शक्ति प्राप्त करने और उसे अपने नियंत्रण में रखने के तरीके एक दूसरे से बिल्कुल अलग होते हैं। पहली प्रकार के राजनीतिज्ञ छल कपट और धूर्तता से राजनैतिक शक्ति प्राप्त करते हैं और उसी शैली में उस पर अपना कब्जा बनाए रखते हैं। जबकि दूसरे प्रकार के राजनीतिज्ञ सत्ता प्राप्त करने के लिए सैन्य शक्ति का खुला प्रयोग करते हैं। इसी प्रकार इन राजनीतिज्ञों की एक दूसरे को सत्ता से हटाने और पुनः सत्ता प्राप्त करने के तरीके चक्रीय होते हैं। जैसे शेर की प्रवृत्ति वाले राजनीतिज्ञ लोमड़ी की प्रवृत्ति वाले राजनीतिज्ञों को सैन्य बल द्वारा सत्ता से हटा देते हैं और संपूर्ण आधिपत्य बनाए रखते हुए बल पूर्वक शासन करते रहते हैं। जबकि लोमड़ी की प्रवृति वाले राजनीतिज्ञों को फिर से सत्ता में आना होता है तो वे शेर की प्रवृति वाले राजनीतिज्ञों को हराने के लिए राजनैतिक गठबंधन करते हैं और अपनी ताकत बढ़ाते हुए तरकीब से सत्ता हथिया लेते हैं लेकिन यह हमेशा सत्ता में नहीं बने रह सकते। सिंह प्रवृत्ति वाले राजनीतिज्ञ फिर से सैन्य बल का इस्तेमाल करते हैं और लोमड़ी प्रवृत्ति के राजनीतिज्ञों से फिर सत्ता छीन लेते हैं। सत्ता परिवर्तन का यह चक्रीय रूप से लगातार चलता रहता है।

3) संरचनात्मक प्रकार्यात्मक सिद्धांत

ढांचागत क्रियात्मक सिद्धांत सामाजिक परिवर्तन के छोटे तथा मझोलेस्तर के परिवर्तनों से सीधे जुड़े होते हैं। इन सिद्धांतों को मानने वाले विचारक समाज को मानव-शरीर की तरह मानते हैं। जैसे शरीर विभिन्न अंगों के संतुलित कार्यों से क्रियाशील रहता है, उसी प्रकार समाज के विभिन्न संस्थान एक दूसरे के साथ समरसता बनाए रखते हुए सामाजिक ढांचे को बनाए रखते हैं। ये विद्वान मानते हैं कि परिवर्तन लगातार होता रहता है। ये परिवर्तन तब तक समाज के ढांचे को बार-बार बनाते बिगाड़ते रहते हैं जब तक समाज सांस्कृतिक स्वरूप प्राप्त नहीं कर लेता। इनमें से उन परिवर्तनों को समाज स्वीकार भी करते हैं और आत्मसात भी करता है जो उनके लिए उपयोगी होते हैं। गैर उपयोगी परिवर्तनों को समाज स्वीकार नहीं करते। जब-जब गैर जरूरी बदलावों के कारण सामाजिक संतुलन गड़बड़ाता है, सामाजिक संस्थान तमाम गड़बड़ियों को दुरस्त कर फिर से सामाजिक संतुलन स्थापित कर देते हैं। जैसे प्राकृतिक आपदा, भूखमरी, शरणार्थियों के बड़ी संख्या में घुस आने, अथवा युद्ध की स्थिति उत्पन्न हो जाने पर सामाजिक संतुलन भंग हो जाता है और सामाजिक संस्थानों पर फिर से इस संतुलन को स्थापित करने का दायित्व आ पड़ता है।

रोबर्ट मर्टन का विचार है कि सभी बड़े सामाजिक ढांचें या तो अपने आप में समय रहते आवश्यक सुधार कर लेते हैं या फिर नष्ट हो जाते हैं। जो समाज किसी भी हालात में बदलने से इनकार कर देते हैं उनका अपने अस्तित्व को ज्यों का त्यों बनाए रखना मुश्किल हो जाता है।

4) **वर्ग संघर्ष का सिद्धांत**

इन सिद्धांतों में विश्वास रखने वाले विचारक यह मानते हैं कि जब समाज में संसाधनों का वितरण असमान होता है और उनके बीच बड़े अंतराल आ जाते हैं तो समाज में तनाव पैदा हो जाता है, असहमति उत्पन्न हो जाती है और टकराव बढ़ने लगते हैं। वर्ग संघर्ष के सिद्धांतों को मानने वाले विचारक कहते हैं कि सभी समाज तरक्की करना चाहते हैं। जब शोषित वर्ग अपनी जीवन दशा सुधार लेते हैं तो सामाजिक विकास होता है और टकरावों की संभावना बढ़ने लगती है। उनका विश्वास है कि हर समाज में नीचे से ऊपर उठने की प्रवृत्ति होती है। वे मानते हैं कि टकराव बेहतर समाज निर्माण के लिए जरूरी घटक हैं। वे यह भी मानते हैं कि सामाजिक टकरावों के बिना परिवर्तन नहीं होते, टकराव परिवर्तन में सहयोगी होते है।

वर्ग संघर्ष के सिद्धांत को जन्म देने का श्रेय मुख्यतः कार्ल मार्क्स को जाता है। उनके बाद जितने भी विचारक आए जिनका विश्वास वर्ग संघर्ष के सिद्धांत में था, वे सब कार्ल मार्क्स के पदचिन्हों पर ही चले। कार्ल मार्क्स का सिद्धांत पूंजीपति तथा सर्वहारा के बीच उत्पन्न होने वाले वर्ग संघर्ष तथा उसके परिणामों पर आधारित है। कार्ल मार्क्स समाज को एक ऐसा संगठन मानता है जिसमें दो विरोधी वर्ग निवास करते हैं एक शोषक दूसरा शोषित। कार्ल मार्क्स का मानना था कि जब तक पूंजीवादी व्यवस्था रहेगी तब तक शोषित वर्ग शोषक वर्ग के खिलाफ निरंतर संघर्ष करता रहेगा। कार्ल मार्क्स का विश्वास था कि दोनों वर्गों के बीच टकराव से समाज में क्रांतिकारी परिवर्तन होंगे और फिर एक ऐसा समाज बन जाएगा जिसमें वर्गों के लिए कोई जगह नहीं होगी यह मानव समाज की उच्चवस्था होगी।

कार्ल मार्क्स पहला विचारकथा जिसने हेगल के द्वंदात्मक सिद्धांत का विश्लेषण किया। सामाजिक परिवर्तन की द्वंदात्मक पद्धति न तो एक रेखीय परिवर्तन का समर्थन करती है न ही चक्रीय परिवर्तन का। यह सिद्धांत यह मानता है कि विरोध और संघर्ष के फलस्वरूप नए सामाजिक ढांचे का जन्म होता है। परंपरागत समाज में जब शोषक और शोषित के बीच संघर्ष होता है तो नए समाज का जन्म होता है इस प्रकार यथास्थिति से विरोध उत्पन्न होता है और विरोध के फलस्वरूप जो संघर्ष पैदा होता है वो सामाजिक स्थिरता को जन्म देता है लेकिन यह स्थिरता अथवा समरसता हमेशा बनी नहीं रहती। समाज में फिर विभिन्न कारणों में से फिर और फिर वर्ग संघर्ष की स्थिति बनती है और परिणामस्वरूप फिर से वर्गहीन समरस समाज विकसित हो जाता है। वर्ग संघर्ष के सिद्धांत में विश्वास रखने वाले विद्वान यह मानते हैं कि समाज में यह प्रक्रिया बार-बार दोहराई जाती रहती है। आधुनिक युग के विचारक ऊपर बताये गए सभी सामाजिक परिवर्तन के विभिन्न सिद्धांतों को कहीं न कहीं मान्यता देते है।बहुत कम विचारक ऐसे हैं जो इन सिद्धांतों से हटकर अपने नए मौलिक सिद्धांतों को जन्म दे पाए हैं। ऐसे विचारकों की संख्या भी बहुत कम है जो यह मानते हैं कि सामाजिक परिवर्तनों से सदैव सामाजिक विकास ही होता है अथवा समाज का पतन और क्षरण आवश्यक रूप से होता है। फिर भी आमतौर पर लोगों का यह मानना है कि समाज बदलते हैं और उनके पीछे सामाजिक परिस्थितियां किसी न किसी रूप में विद्यमान रहती हैं और समाज के बाहर भी, व्यवस्थि तभी हो सकती हैं और अव्यवस्थित भी। ज्यादातर विचारक हैं जो यह मानते हैं कि सभी सामाजिक परिवर्तन अच्छे या बुरे की श्रेणी में नहीं आते। वे सभी इस मामले में एकमत हैं कि संतुलित व समरस समाज द्वंदों से भरे और हाय तौबा वाले समाजों की तुलना में अच्छे होते हैं। यद्यपि सामाजिक स्थिरता कभी-कभी शोषण, दमन और अन्याय को भी जन्म देती है। ऐसी स्थिति में जब समाज में अन्याय और शोषण बढ़ता ही जा रहा हो तब बेहतर है

कि शोषित व दमित वर्ग शोषण व दमन के खिलाफ आवाज उठाएं और टकराव की स्थिति पैदा हो। इससे समाज अपने आप को बदलने के लिए विवश हो जाएगा और इस बात की संभावना रहेगी परिणामस्वरूप बेहतर समाज का जन्म हो। इस प्रकार परिवर्तन समाज के लिए जरूरी है और प्रायः यह माना जाता है कि इसका परिणाम अच्छा ही होगा। परिवर्तन और स्थिरता दो ऐसी अवस्थाएं हैं जो एक दूसरे से जुड़ी होती हैं और किसी भी समाज में घटित होती रह सकती हैं।

बोध प्रश्न 1

1) समाजशास्त्र किस मामले में हमारी सहायता करता है?

   a) समाज में होने वाले जटिल परिवर्तनों को समझने में।

   b) सामाजिक परिवर्तनों को रोकने में।

   c) सामाजिक परिवर्तनों को बढ़ावा देने में।

2) सामाजिक परिवर्तन क्या होता है? 2 पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

   .....

   .....

   .....

   .....

12.4 सामाजिक परिवर्तन के घटक

समाजों में विभिन्न कारणों से परिवर्तन आते हैं। यह कारण परिवर्तनों की प्रकृति तथा उनकी रफ्तार को तय करते हैं। समाज में परिवर्तन लाने वाले घटकों को चार भागों में बांटा जा सकता है।

1) जैविक घटक
2) भौगोलिक घटक
3) तकनीकी घटक
4) सामाजिक व सांस्कृतिक घटक

1) **जैविक घटक**

जैविक घटकों के कारण समाज में जो परिवर्तन आते हैं उन्हें दो श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है। एक, गैर मानवीय जैविक घटक तथा दूसरा , मानवीय जैविक घटक।गैर मानवीय जैविक घटकों में पेड़-पौधे तथा जानवर आते हैं।ये दोनों घटक मानव जीवन को विभिन्न प्रकार से प्रभावित करते हैं। जीवित रहने के लिए मनुष्यों को पेड़ पौधों और जीवधारियों की जरूरत पड़ती है। मनुष्य इनसे अपना भोजन, वस्त्र, औषधियां तथा अनेक अन्य प्रकार के संसाधन विभिन्न रूप में प्राप्त करते हैं। हानिकारक वनस्पतियों तथा जानवरों को मनुष्य पसंद नहीं करते और वे उन्हें या तो नष्ट कर डालते हैं या फिर उनसे दूरी बनाकर रखते हैं। इतना ही नहीं मनुष्यों को सांस लेने के लिए अप्रत्यक्ष रूप से वनस्पतियों और जीवधारियों की आवश्यकता होती है। मनुष्य तथा पेड़-पौधों का जीवन एक दूसरे पर निर्भर होते है। मनुष्य तथा अन्य प्राणी आक्सीजन ग्रहण करते हैं और कार्बन डाइऑक्साइड छोड़ते हैं। पेड़ पौधे मनुष्यों

द्वारा छोड़ी गई कार्बन डाइऑक्साइड की मदद से प्रकाश संश्लेषण की क्रिया द्वारा अपना भोजन तैयार करते हैं। जैविक पर्यावरण सदा बदलता रहता है तथा एक प्राणी अपने-आप को जिंदा रखने के लिए दूसरे प्राणी को नष्ट करता रहता है। जीवित रहने के लिए जो संघर्ष की प्रक्रिया चलती रहती है उसके दौरान अनेक प्रजातियां नष्ट होती हैं तथा उनके स्थान पर अनेक प्रजातियां उत्पन्न हो जाती हैं। विभिन्न प्रजातियों के जीवन संघर्ष विभिन्न प्रकार के भौगोलिक घटकों से भी प्रभावित होते रहते हैं। जैसे अत्यधिक जलवायु परिवर्तन, मिट्टी की संरचना में खास प्रकार के परिवर्तन, भूक्षरण, झीलों, नदियों तथा अन्य अनेक प्रकार की जल धाराओं का सूख जाना। पर्यावरण में ऐसे परिवर्तनों के कारण कई बार अनेक प्रकार की प्रजातियां समाप्त हो जाती हैं और उनके स्थान पर नई प्रजातियां जन्म ले लेती है। पर्यावरण व्यवस्था में होने वाले इस प्रकार के परिवर्तन मानव समाज को भी प्रभावित करते हैं ... और मनुष्यों के जीवित करने के लिए किए जाने वाले संघर्षों के आयाम बदल जाते हैं। आधुनिक युग में मनुष्यों ने पर्यावरण पर नियंत्रण रखने के अनेक तरीके विकसित कर लिये हैं जिससे मनुष्य अपने अस्तित्व को विपरीत परिस्थितियों में भी बनाए रखने में सफल हो रहा है। उसने अनेक प्रजातियों को अपने अधीन कर लिया है और अपने अनुकूल बना लिया है। अनेक प्रकार की ऐसी तकनीक उत्पन्न कर ली हैं जो जैविक घटकों को अनुकूल बना लिया हैं। फिर भी अनेक ऐसी चीजें है जिस पर मनुष्यों का बस नहीं है, जैसे सूक्ष्म जीवाणुओं द्वारा उत्पन्न होने वाली बीमारियां। ये घटक मनुष्यों के सामने कठिनाइयां पैदा कर रहे हैं।

मानवीय जैविक घटक दो तरह से सामाजिक परिवर्तन को प्रभावित करता है -

1) मनुष्यों के अनुवांशिक गुणों को प्रभावित करते हैं।

2) समाज विशेष की जनसंख्या घनत्व जनसंख्या की संरचना को प्रभावित करते हैं।

अनुवांशिक गुण पर पड़ने वाला प्रभाव इतना अधिक नहीं होता जितना जनसंख्या के कारण मानव समाज पर पड़ने वाला प्रभाव होता है। मनुष्यों का बौद्धिक स्तर तथा अन्य क्षमताएं अन्य जीवधारियों की तुलना में सामाजिक व सांस्कृतिक विकास की प्रक्रिया को अधिक प्रभावित करती हैं। मनुष्य का अनुवांशिक गुण एक ओर मनुष्य की जनसंख्या तथा उसकी संरचना को प्रभावित करता है, दूसरी ओर अगली पीढ़ी की अनुवांशिक गुणवत्ता पर प्रभाव डालता है। इस प्रकार मनुष्य सदा बदलते रहते हैं। अनुवांशिक घटक की तुलना में जनसंख्या में परिवर्तन का सामाजिक बदलाव पर गहरा प्रभाव पड़ता है। जनसंख्या में वृद्धि तथा संरचना की प्रकृति मनुष्य के सामाजिक व सांस्कृतिक जीवन को विभिन्न कारणों से प्रभावित करते रहते हैं। अब क्योंकि मनुष्य ने नई तकनीकों का विकास कर लिया है और स्वास्थ्य एवं स्वच्छता के नये नये खोज निकाल पाए हैं। इससे पिछली दो शताब्दियों से मृत्यु दर में गिरावट आई है तथा जीवित रहने की संभावनाओं में हुई वृद्धि से मनुष्य की औसत आयु बढ़ गई है। परिणामतः विश्व भर में जनसंख्या में उछल आ गया है। जनसंख्या का स्थानांतरण भी समाज में बदलाव लाता है। इससे पर्यावरण पर असर पड़ता है। सांस्कृतिक सम्मिसरण तथा विसरण के कारण सामाजिक टकराव की स्थिति भी उत्पन्न हो जाती है। जनसंख्या बढ़ती जाए और खाद्यान्न के उत्पादन में उसी अनुपात में वृद्धि न हो तो अनेक प्रकार की समस्याएं उत्पन्न हो जाती हैं-अकाल और युद्ध की स्थिति भी आ सकती है।

अधिक अन्न उत्पादन द्वारा स्थितियों से निपटने के लिए उत्पादन की नई-नई प्रौद्योगिकियों को जन्म देना समय की मांग बन जाती है। खेती के नये नये तरीके चलन में आ जाते हैं।

2) **भौगोलिक घटक**

भौगोलिक परिवर्तन भी सामाजिक परिवर्तन लाते हैं। दुनिया भर में ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं जब भौगोलिक परिवर्तन के कारण सामाजिक संरचना व लोगों के स्वभावों में सामाजिक परिवर्तन आए। ज्वालामुखी फटने से पौम्पी में संपूर्ण विनाश हो गया। 1840 में आलू-अकाल के कारण आयरलैंड के निवासियों को भागकर अमेरिका में शरण लेनी पड़ी। प्राकृतिक आपदायें पर्यावरण में भी बदलाव लाती हैं और सामाजिक संरचना में भी। कभी-कभी प्राकृतिक आपदाओं के शिकार लोग अपने रिश्तेदारों तथा दोस्तों को खो बैठते हैं , उनके संसाधन नष्ट हो जाते हैं और वे मानसिक आघात के कारण भीषण पीड़ा झेलने पर विवश हो जाते हैं। वे अपने समाज से कट जाते हैं और उन्हें फिर से नए समाज का निर्माण करना पड़ता है। पारिस्थितिकी में आया परिवर्तन भी आधुनिक काल में सामाजिक परिवर्तन का बड़ा कारण है। अनेक पारिस्थितिक परिवर्तनों का जनक स्वयं मनुष्य ही है। किसी क्षेत्र विशेष में जनसंख्या का घनत्व बढ़ना प्राकृतिक संसाधनों का दोहन, सामाजिक एवं राजनैतिक टकराव, जंगलों का कटना, बड़े-बड़े बांधों का निर्माण आदि सब आज की दुनिया में बड़े सामाजिक बदलाव के कारण बने हुए हैं। ये परिवर्तन आबादी के स्थानांतरण तथा प्राकृतिक विनाशों से भी अधिक प्रभावकारी हैं।

3) **तकनीकी घटक**

प्रौद्योगिकी सामाजिक परिवर्तन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। आज की दुनिया में यह बहुत बड़ा सच है। प्रागैतिहासिक युग में परिवर्तन बहुत धीमी गति से होता था। तब हमारे पूर्वज पत्थरों के औजारों से दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति किया करते थे। प्रौद्योगिकी के विकास के कारण हमारे युग में परिवर्तन की गति बहुत तेज हो गई है। आधुनिक तकनीकी आविष्कारों ने उत्पादन के तरीकों तथा उत्पादन के संदर्भों को तेजी से बदल डाला है, और पुराने पारंपरिक सामाजिक ढांचे, विचार व परंपराएं विश्वास व धारणायें आदि काफी बदल चुके हैं। प्रौद्योगिकी मौलिक पर्यावरण को बदल डालती है, और मनुष्य समाज उसे स्वीकार करने पर विवश होते हैं। एक ओर प्रौद्योगिकी मनुष्य समाज के लिए एक वरदान साबित हुई है, दूसरी ओर उसके कुछ नकारात्मक पहलू भी हैं। प्रौद्योगिकी का इस्तेमाल संतुलन व संयम के साथ, जरूरी जानकारी के साथ न किये जाये तो वह भारी विनाश का कारण बन जाती है। समाज पर प्रौद्योगिकी के गलत इस्तेमाल के दुष्परिणाम सामाजिक संस्थानों व सामाजिक ढांचों पर स्पष्ट दिखाई दे रहे हैं। सामुदायिक जीवन का विघटन एक बड़ा नकारात्मक परिणाम है। इसके कारण लोग अकेले पड़ते जा रहे हैं। सामाजिक समरसता एवं सरोकारों को इससे भारी क्षति हो रही है।

4) **सामाजिक एवं सांस्कृतिक घटक**

सामाजिक व सांस्कृतिक घटक समाजों में बदलाव लाने में बड़ी भूमिका निभाते हैं। मनुष्य स्वयं सामाजिक बदलाव के लिए अत्यधिक जिम्मेदार होता है। अनुसंधान, नई नई खोजें, सांस्कृतिक सम्मिश्रण, सामाजिक आंदोलन आदि सामाजिक ढांचों में बड़े बदलाव लाते हैं। किसी समाज विशेष के लोगों में नवीनीकरण की आकांक्षा, उनके मूल्य, धारणाएं एवं दृष्टिकोण समाज में बड़ा बदलाव लाते हैं। नवीनीकरण की प्रक्रिया में नई-नई खोजों एवं आविष्कारों का बड़ा योगदान रहता है। इसके फलस्वरूप समाज में आमूल-चूल परिवर्तन हो जाता है। यद्यपि आविष्कार उन तथ्यों या चीजों की जानकारी प्राप्त करने के अलावा और कुछ नहीं है जो मनुष्य को अब तक ज्ञात नहीं थीं, फिर भी उनसे समाज की सोच व शैली तथा ढांचों में भारी बदलाव आता है।

वर्णमालाओं के आविष्कार, राज्यों के आधुनिक ढांचों का निर्माण तथा नवीन प्रौद्योगिकियों के विकास से बड़े पैमाने पर सामाजिक बदलाव आएं हैं। संस्कृतियों का एक समूह से दूसरे समूह में विसरण सामाजिक परिवर्तन को जन्म देता है। ज्यों-ज्यों लोग आधुनिकीकरण के कारण नए-नए लोगों के संपर्क में तेजी से आते जा रहे हैं, त्यों-त्यों समाजों के अंदर तथा विभिन्न समाजों के बीच संबंधों की संरचनाएं बदल रही हैं और सामाजिक परिवर्तन की गति बढ़ती जा रही है। विसरण की प्रक्रिया मनुष्यों के बीच बढ़ती एकाकीपन की प्रवृत्ति को बेध पाने में असमर्थ है।

सामाजिक आंदोलन भी सामाजिक परिवर्तनों में बड़ी भूमिका निभाते हैं। सामाजिक आंदोलनों को दो विभिन्न रूपों में समझा जा सकता है। कुछ आंदोलनों का उद्देश्य पुराने सामाजिक ढांचों को तोड़कर उनके स्थान पर नए सामाजिक ढांचों का निर्माण करना होता है। ऐसे आंदोलन क्रांतिकारी प्रकृति के होते हैं। कुछ आंदोलन सुधारवादी होते हैं जिनका उद्देश्य पारंपरिक ढांचों में रचनात्मक परिवर्तन करना होता है।

दोनों ही मामलों में सामाजिक परिवर्तन उनकी सफलताओं पर निर्भर करते हैं। क्रांतिकारी आंदोलनों में फ्रांसीसी क्रांति 1789 तथा रूसी क्रांति 1917 वैश्विक स्तरीय आंदोलनों में आते हैं जो समाजों को आमूल-चूल बदल डालने में सफल हुए।

बोध प्रश्न 2

1) सामाजिक परिवर्तन के लिए जिम्मेदार किन्हीं तीन घटकों के नाम बताइए।(दो पंक्तियों में उत्तर दीजिये)

.....

.....

.....

.....

2) क्या सांस्कृतिक विसरण सामाजिक परिवर्तन का एक कारण है? 'हां' या 'न' पर निशान लगाए।

हां न

12.5 सामाजिक परिवर्तन की दर

समाज में परिवर्तन सदैव जारी रहता है, परन्तु उसकी दर सदैव एक सी नहीं होती। अतीत काल में बदलाव की गति बहुत धीमी थी, परन्तु इस समय गति बहुत तेज है। बदलाव में तेजी आने की अनेक वजहें हैं, जैसे विभिन्न प्रौद्योगिकियों के आविष्कार, सांस्कृतिक विसरण एवं सम्मिश्रण, सामाजिक क्रांतियां आदि। सांस्कृतिक विचार चाहे भौतिक हो या अभौतिक दोनों ही प्रकार के सांस्कृतिक प्रभावों का तेजी सी प्रसार हुआ है। इसका कारण है बेहतर तकनीकों तथा बेहतर संपर्क के साधनों का आविष्कार। आधुनिक युग में बड़े पैमाने पर शिक्षा, मीडिया, बाजार तथा संपर्क संसाधनों के सरलीकरण एवं प्रसार से सामाजिक जीवन में तेजी से बदलाव आता जा रहा है। सामाजिक तथा सांस्कृतिक क्रांतियां सामाजिक परिवर्तन की गति तेज कर देती है। क्रन्तिकारी सामाजिक परिवर्तन समाज और राज्यों में ऐसे परिवर्तन लाते हैं जिनका प्रभाव व्यापक रूप से दिखने लगते हैं। समाजवाद, लोकतंत्र, स्वयं फैसला लेने की प्रवृतियों में तेजी आने से सामाजिक परिवर्तन की गति बढ़ जाती है।

इसके बावजूद सभी समाजों में परिवर्तन की गति और शैली एक जैसी नहीं होती। एक ही समाज में कही परिवर्तन की गति तेज होती है कही मंद।

12.6 सामाजिक परिवर्तन का प्रभाव

समाज विज्ञानियों, खासकर समाजशास्त्रियों के लिए मानव समाज पर सामाजिक परिवर्तन के प्रभाव का अध्ययन सदैव एक महत्वपूर्ण विषय रहा है। इस प्रभाव को दो स्तरों पर देखा और समझा जा सकता है। मानव समाज पर व्यक्तिगत प्रभाव तथा मानव समाज पर सामूहिक प्रभाव। यद्यपि सामाजिक परिवर्तन के मानव समाज पर पड़ने वाले प्रभाव के बारे में समाज शास्त्री कभी एकमत नहीं रहे। कुछ समाज शास्त्रियों का विचार है कि औद्योगीकरण की प्रक्रिया मनुष्यों को एक दूसरे से अलग कर देती है क्योंकि उनके कार्यों की प्रकृति इतनी अलग-अलग प्रकार की हो जाती है कि उनकी सामूहिकता प्रभावित हुए बिना नहीं रहती। कार्ल मार्क्स का विचार था कि औद्योगीकरण लोगों को उनके कार्यों से अलग कर देगा क्योंकि जो उत्पादन वे करते हैं उसके मालिक वे स्वयं नहीं होते बल्कि कारखानों के मालिक होते हैं। कुछ समाजशास्त्री यह भी मानते हैं कि औद्योगिक समाज मनुष्य के सामाजिक जीवन को प्रभावित अवश्य करेगा। फर्दीनंद टोनीज तथा मैक्स वेबर उन विचारकों में से हैं जो यह मानते हैं कि औद्योगीकरण मनुष्यों के रिश्ते पर बुरा प्रभाव डालता है। कुछ समाजशास्त्री, जैसे एमिली दर्खाइम का मानना है कि औद्योगीकरण से समाज में जटिलता उत्पन्न होती है, कार्यों का विभाजन होता है और इससे उनके आपसी रिश्तों में सदभाव उत्पन्न होता है। लोगों को व्यक्तिगत स्वतंत्रता का आभास होने लगता है और सामाजिक अखंडता में भी वृद्धि होती है। आधुनिक ज्ञान तथा प्रौद्योगिकी के कारण मनुष्य जीवन में अनेक प्रकार की समस्याओं का जन्म हुआ है और लोगों में चिंता का स्तर बढ़ गया है। औद्योगीकरण से गाड़ियों और मशीनों के अधिक इस्तेमाल के कारण जहरीली गैसें उत्पन्न होती हैं और वायु प्रदूषण का स्तर बढ़ जाता है। वह भौतिक पर्यावरण जिस पर जिंदा रहने के लिए मनुष्य निर्भर करता है भी प्रदूषण के कारण नष्ट हो जाता है। ईंधन की अधिक मांग तथा उर्जा उत्पन्न करने वाले संसाधनों की अधिक मांग के कारण विभिन्न समुदायों तथा देशों के बीच तनाव की स्थिति उत्पन्न हो जाती है और कभी-कभी युद्ध का कारण भी बन जाती है। परमाणु हथियारों तथा अन्य प्रकार के घातक हथियारों के आविष्कार से मानव समाज का अस्तित्व ही खतरे में पड़ जाता है। इससे लोगों में असुरक्षा की भावना पैदा हो जाती हैं। कभी-कभी विभिन्न देशों के बीच विनाशकारी हथियारों की होड़ इतनी बढ़ जाती है कि उसे देखकर लगता है कहीं हम मानव सभ्यता के विनाश की ओर तो नहीं बढ़ रहे। क्योंकि सुरक्षा और अनिश्चितता का अनुपात निरंतर बढ़ता चला जाता है और ऐसा लगने लगता है कि घातक हथियारों की होड़ कहीं तृतीय विश्व युद्ध तो नहीं करा देगी। यदि ऐसा हुआ तो मानव सभ्यता का अस्तित्व क्यों कर बचेगा?

बोध प्रश्न 3

1) क्या सभी समाजों में सामाजिक परिवर्तन की दर एक जैसी होती है?सही या गलत पर निशान लगाइए।

   सही गलत

2) केवल 5 पंक्तियों में समाज पर सामाजिक परिवर्तन के प्रभाव का वर्णन कीजिए।

   .....

   .....

   .....

12.7 सारांश

सामाजिक परिवर्तन सभी मनुष्यों के जीवनों में आवश्यक रूप से होता है। इसे सामाजिक संगठन, सामाजिक ढांचों तथा सामाजिक क्रियाकलापों के संदर्भ में महसूस किया जा सकता है। सामाजिक परिवर्तन का एक रूप सामाजिक रूपांतरण भी है। इसके लिए क्रांतिकारी परिवर्तन की आवश्यकता होती है। यह परिवर्तन सामाजिक ढांचों को इस तरह बदल डालते हैं कि वे पहले जैसे रहते ही नहीं। विकासवादी सिद्धांतकार यह मानते हैं कि समाज तब तक विकसित होते रहते हैं जब तक विकास के चरमोत्कर्ष पर नहीं पहुंच जाते। इन विचारकों के अनुसार सामाजिक परिवर्तन समाज के लिए हितकारी होते हैं। चक्रीय सिद्धांतों का यह मानना है कि सामाजिक परिवर्तन सदा चक्रों में विभाजित होते हैं। कोई समाज पहले उन्नति की ओर बढ़ता है, फिर उन्नति के शिखर पर पहुंच जाता है और उसके बाद वहीं से उसमें क्षरण की प्रक्रिया आरंभ हो जाती है। इसे सामाजिक परिवर्तन का एक चक्र कहा जाता है। समाज इन चक्रों को बार-बार दोहराते हैं। ढांचागत क्रियात्मक सिद्धांत मानते हैं कि समाज में स्थिरता भी विद्यमान रहती है और व्यवस्था भी। परंतु कभी-कभी सामाजिक ढांचों में परिवर्तन भी आते हैं। वर्ग संघर्ष के सिद्धांतों का मानना है कि जब-जब समाज में अन्याय, अत्याचार और शोषण बढ़ जाता है तब-तब वर्ग संघर्ष जन्म लेता है और सामाजिक विकास के लिए इसका होना जरूरी है। इसके नतीजे सदैव सामाजिक हित में होते हैं। सामाजिक परिवर्तन के लिए कुछ घटक विशेष रूप से जिम्मेदार होते हैं।इनमें प्रमुख रुप से जैविक घटक, भौगोलिक घटक, प्रौद्योगिक घटक तथा सामाजिक एवं सांस्कृतिक घटक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। हम यह भी देखते हैं कि सामाजिक परिवर्तन अलग-अलग गतियों से होते हैं और उनकी गतियां विभिन्न सामाजिक परिस्थितियों एवं स्थितियों पर आधारित होती हैं। समाज शास्त्रियों के लिए सामाजिक परिवर्तन के मानव समाज पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन करना विशेष रूप से महत्व रखता है। सामाजिक परिवर्तनों का मानव समाज पर प्रभाव दोनों प्रकार का होता है-सामाजिक हितकारी भी और सामाजिक अहितकारी भी।

12.8 संदर्भ

चिल्डे, वी. गॉर्डोन. (1942). व्हाट हप्पेनेड इन हिस्ट्री. मिड्डलसेक्सः पेंगुइन बुक्स

कोम्टे, अगस्ते. (1974). द पॉजिटिव फिलोसोफी. न्यू यॉर्कः एमस प्रेस

दुर्खेइम, एमिले. 1947 (1893).द डिवीजन ऑफ लेबर इन सोसाइटी. न्यू यॉर्कः द फ्री प्रेस

क्रोएबेर, ए.ल. (1958). स्टाइल एंड सविलिजतिओन्स. न्यू यॉर्कः कॉर्नेल यूनिवर्सिटी प्रेस

मर्टन, आर. के. 1968 (1948).सोशल थ्योरी एंड सोशल स्ट्रक्चर. न्यू यॉर्कः द फ्री प्रेस.

मूरे, विल्बर्ट इ. (1987). सोशल चेंज. न्यू दिल्लीरू प्रेन्टिस हॉल ऑफ इंडिया प्राइवेट लिमिटेड.मॉर्गन, लेविस हेनरी. 1963 (1877).अन्सिएंट सोसाइटी. क्लीवलैंड एंड न्यू यॉर्कः द वर्ल्ड पब्लिशिंग कंपनी.

परेटो, विल्फ्रेडो. (1935). द माइंड एंड सोसाइटी. न्यू यॉर्कः हरकोर्ट ब्रेस.

सहलीन्स, मार्शल डी. एंड एलमन आर. सर्विस. (1960) (एड्स.). एवोलुशन एंड कल्चर. अन्न आर्बरः यूनिवर्सिटी ऑफ मिशिगन प्रेस.

सोरोकिन, पिटिरिम. (1957). सोशल एंड कल्चरल डायनामिक्सः ए स्टडी ऑफ चेंज इन मेजर सिस्टम्स ऑफ आर्ट, ट्रुथ, एथिक्स, लॉ, एंड सोशल रिलेशनशिप्स. बोस्टनः पोर्टर सार्जेंट.

स्पेंसर, हर्बर्ट. (1898). द प्रिंसिपल्स ऑफ सोशियोलॉजी. 3 वॉल्स. न्यू यॉर्कः डी. एप्पलटन एंड सीओ.

स्पेंगलर, ओसवाल्ड. 1962 (1918).द डिक्लाइन ऑफ द वेस्ट. न्यू यॉर्कः क्नोफ्फ.

स्टुअर्ड, जूलियन एच. (1963). थ्योरी ऑफ कल्चर चेंजः द मेथोडोलोग्य ऑफ मुलतिलिनार एवोलुशन. अर्बनाः यूनिवर्सिटी ऑफ इलेनॉइस प्रेस.

टोंनीज, फर्डीनांड. 1963 (1887).कम्युनिटी एंड सोसाइटी. ट्रांस. सी.पी. लूमिस. न्यू यॉर्कः हार्पर एंड रौ.

टॉयनबी, अर्नाल्ड. 1946 (1934).स्टडी ऑफ हिस्ट्री. न्यू यॉर्कः ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.

टयलोर, एडवर्ड बी. (1871). प्रिमिटिव कल्चरः रेसर्चेस इनटू द डेवलपमेंट ऑफ माइथोलॉजी,

फिलोसोफी, रिलिजन, लैंग्वेज, आर्ट एंड कस्टम्स. लंदनः जे. मुर्रे.

वेबर, मैक्स. (1958). द प्रोटोस्टेंट एथिक एंड थे स्पिरिट ऑफ कैपिटलिज्म. ट्रांस. तालकोट पारसंस. न्यू यॉर्कः स्क्रिब्नरस .

वाइट, लेस्ली ए. (1959). द एवोलुशन ऑफ कल्चर. न्यू यॉर्कः मक्ग्रॉ-हिल.

12.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) अ)

2) सामाजिक परिवर्तन सामाजिक संगठन, सामाजिक ढांचों तथा सामाजिक क्रियाओं में होने वाले महत्त्वपूर्ण रूपांतरण को कहा जाता है।

बोध प्रश्न 2

सामाजिक परिवर्तन के तीन घटक इस प्रकार हैं-

(i) जैविक घटक (ii) प्रौद्योगिक घटक (iii) सामजिक एवं सांस्कृतिक घटक

2) हाँ

बोध प्रश्न 3

1) नहीं

2) सामाजिक परिवर्तन का व्यक्ति और समाज दोनों पर गहरा प्रभाव पड़ता है। अनेक समाजशास्त्री मानते हैं कि औद्योगिक समाज लोगों को एक दुसरे से अलग कर देते हैं क्योंकि सबके काम अलग अलग प्रकार के होते हैं। कुछ समाजशास्त्री यह मानते हैं कि सामाजिक परिवर्तन के कारण समाज प्रभावित होते हैं और उनमें काफी बदलाव आ जाते हैं। कुछ समाजशास्त्री ऐसे भी हैं जिनका विश्वास है कि औद्योगीकरण से सामाजिक संरचना जटिल हो जाती है और उसमें विविधता आ जाती है। औद्योगिक समाज मानव समाज तथा मानव जीवन पर रचनात्मक प्रभाव डालते हैं। कार्य विभाजन तथा विशिष्ट व्यवस्थाओं के कारण मनुष्यों के आपसी रिश्तों पर सकारात्मक प्रभाव पड़ते हैं।

शब्दावली

उद्विकासः एक ऐसी प्रक्रिया जिससे चीजों का रूप सरल एक से बदलकर और अधिक जटिल हो जाता है। विकासवाद का विचार ज्यादातर मानव जाति की प्रजातियों की उत्पत्ति से जुड़ा है, लेकिन समाज के लिए भी लागू किया जा सकता है

नृजातिः एक विशेष सामाजिक समूह के जीवन के तरीके का वर्णनात्मक विवरण।

टोटेमः किसी जानवर या पक्षी के रूप का एक लकड़ी या पत्थर का प्रतिनिधित्व जो लोगों के समुदाय का एक पौराणिक पूर्वज माना जाता है।

प्रसारः प्रसार या फैलाव या बिखराव।

पूंजीवादीः उत्पादन की एक औद्योगिक व्यवस्था में, उत्पादन के साधनों के मालिकों के वर्ग (जैसे, पूंजी यानी धन, संपत्ति, उपकरण, आदि) को पूंजीवादी कहा जाता है।

AGIL: समाज की व्यवस्था और उपव्यवस्था का विश्लेषण करना पार्सन्स का प्रतिमान है। एक संक्षिप्त नाम में एजीआईएलहै। (। अनुकूलन के लिए है), G (G लक्ष्य प्राप्ति के लिए खड़ा है), (एकीकरण के लिए है) और (अव्यक्तता के लिए एल),अर्थात - ढांचा रखरखाव और तनाव प्रबंधन)।

प्रकार्यः वह भूमिका जो किसी समाज/सामाजिक व्यवस्था में उसके अस्तित्व के लिए भूमिका निभाती है।

प्रकार्यवादः यह सामाजिक सिद्धांत है जो मानता है कि समाज के प्रत्येक घटक के कार्य हैं जो समाज के अस्तित्व के लिए अपरिहार्य हैं।

सामाजिक व्यवस्था : यह संबंधों का प्रतिरूपित नेटवर्क है जो एक सुसंगत पूर्ण का निर्माण करता है जो व्यक्तियों, समूहों और संस्थाओं के बीच मौजूद होता है।

फिलोमिनाः कोई दृश्य घटना

लेग्यूः भाषा सम्बंधी शब्द जिसे फरदीनंद डी सॉसर ने भाषा सम्बंधी नियम अथवा भाषा की संरचना के लिए इस्तेमाल किया था। संपूर्ण व्याकरण प्रणाली जो किसी विशेष समुदाय द्वारा बोलने में इस्तेमाल की जाती है, उसे लेंग्यू कहा जाता है।

स्ट्रक्चरलिज़्मः संरचनावादः संपूर्ण विश्लेषण जो भाषाई तकनीक के इस्तेमाल द्वारा उस विधि को समझाने का प्रयास करता है जिससे पूरी बात समझ में आ जाये। इसमें समूचा सम्पर्क एवं सामाजिक व्यवहार समाहित होता है।

टोटमिज़्म : टोटेमवादः एक धर्म, जिसमें पशु, पेड़ या अन्य चीज पूज्य माना जाता है और पूरा समुदाय उससे मनवांछित फल प्राप्त करता हैं।

टकराव (Conflict) : वह स्तिथि जब विभिन्न मानव समूहों में कार्य के अधिकार तथा कार्य-आधारित संबंधों को लेकर विरोध उत्पन्न हो जाता है।

वर्ग (Class) : लोगों का बड़ा समूह जिसके सदस्यों की स्थितियां तथा उनके हित समान होते हैं, आपस में सोच तथा क्रिया विधियों को लेकर सहमति होती है।

शक्ति (Power) : दूसरों को अपने अनुसार चलाने की क्षमता।

(Authority) : प्राधिकाररू सत्ता की न्याय संगतता प्राधिकार कहलाती है।

दलित आंदोलनः इसका अर्थ है कि दलितों का उनके खिलाफ होने वाले हर तरह के भेदभाव और उनके अधिकारों की रक्षा के प्रति विरोध।

दलितः जिन सामाजिक समूहों ने छुआछूत सहित अनेक प्रकार के भेदभाव का सामना किया है, उन्हें दलित कहा जाता है।

समानताः लिंग और जातीयता के आधार पर पक्षपात किये बिना सभी लोगों को प्रति निष्पक्ष आचरण की गारंटी देना।

पदानुक्रमः एक व्यवस्था जिसमें एक संस्था या समाज के सभी सदस्यों को उनकी परस्पर स्थिति या सत्ता के अनुसार क्रमानुगत श्रेणियों में रखना पदानुक्रम है।

सामाजिक संरचनाः यह सामाजिक आदर्शों और मूल्यों द्वारा संचालित स्थितियों, भूमिकाओं, संस्थानों के संदर्भ में परस्पर व्यवहार की एक व्यवस्था में व्यक्तियों और समूहों के अंतः संबंधी अधिकारों और दायित्वों का संयोजित स्वरूप है।

स्थितिः किसी व्यक्ति या व्यक्ति के समूह के लिए स्वतंत्रता और सम्मान की डिग्री को दर्शाता है। समाज में एक उच्च स्थिति या स्थायी और सम्मान आमतौर पर अधिकांश व्यक्तियों और समूहों द्वारा मांगा जाता है।

असेम्बली लाइनः यह आधुनिक फैक्टरी प्रणाली का एक तत्व हैं, जिसमें श्रमिक किसी वस्तु के विभिन्न हिस्सों पुर्जों को ''एसेम्बल'' करते अर्थात् जोड़ते हैं अथवा उनपर कुछ काम करते हैं, इसमें प्रत्येक श्रमिक का अपना निश्चित काम होता है। इससे उत्पादन में गति आती है।

प्रतिमानहीनता (anomie): दर्खाइम ने इस शब्द का इस्तेमाल ऐसी स्थिति के लिए किया हैं, जिसमें व्यक्ति अपने आपको समाज में रचा-बसा हुआ महसूस नहीं करते।

पूरक (complementary): ऐसा काम जिससे सहायता या समर्थन मिलता है। उदाहरण के लिए नर्स की भूमिका डाक्टर की भूमिका की पूरक हैं।

समाज का ''संघर्ष'' मॉडलः यह समाज के प्रति एक दृष्टिकोण हैं, जिसमें व्यवस्था की बजाय उसके तनावों और संघर्षों पर बल दिया जाता है। मार्क्स के अनुसार, उत्पादन के सामाजिक संबंध तनाव एंव संघर्ष का आधार हैं।

समाज का ''प्रकार्यात्मक'' मॉडल इस दृष्टिकोण में समाज व्यवस्था तथा इस तथ्य पर बल दिया जाता है कि किसी प्रकार विभिन्न सामाजिक संस्थाए और उप-प्रणालियां सक्रिय रहती हैं और सामाजिक व्यवस्था को कायम रखने में योगदान देती हैं।

विषमरूपी यह ''समरूपी'' को विलोम है। इसका अर्थ है विविधता, अलग-अलग प्रकार। उदाहरण के लिए, भारत की जनसंख्या विषमरूपी है। यहां अलग-अलग जातियां, भाषाएं, धर्म, परम्पराएं आदि मौजूद हैं।

अतिरिक्त मूल्य (surplus value): जब श्रमिक अपनी श्रम शक्ति कच्चे माल पर खर्च करता है तो वस्तुओं का निर्माण होता है। इस प्रकार, श्रमिक द्वारा माल के मूल्य में वृद्धि की जाती है। श्रमिक द्वारा पैदा किया गया यह मूल्य उसे दिए गए वेतन से कहीं अधिक होता हैं। पैदा किए गए मूल्य तथा प्राप्त वेतन के बीच अंतर ''अतिरिक्त मूल्य'' कहलाता है। मार्क्स का कहना है कि इस ''अतिरिक्त मूल्य'' को पूँजीपति हड़प जाता है।

दैवीकरणः दिव्य स्तर प्रदान करना

सामूहिक उत्तेजनाः सामूहिक उत्साह की भावना। इससे व्यक्तियों के आपसी बंधन और अधिक मजबूत बन जाते है, और जिससे व समाज में अपनी सदस्यता पर गर्व करते है।

सामूहिक प्रतिनिधानः इससे दर्खाइम का तात्पर्य है समाज के वे सभी विचार, कल्पनाएं और परिकल्पनाएं जो समान होती है। उदाहरण के लिये सौंदर्य, सत्य, सही, गलत आदि।

नैतिक पैग़म्बरः ये लोगों को प्रभावशाली उपदेश देते है, जो अक्सर धार्मिक होते है। वे पुरानी सामाजिक व्यवस्था का पतन चाहते हैं जिसे वे बुरा मानते है। वे अनुयायियों को एक नयी दिशा देते है और ईश्वर से संपर्क सिद्व करने के प्रयास करते है। यहूदी धर्म, ईसाई धर्म, इस्लाम पैग़म्बरों के धर्म है।

आनुभाविकः अनुभव, प्रेक्षण पर आधारित

जादू-टोना : प्रकृति को व्यक्तिगत स्वार्थ्य हेतु प्रभावित करने का प्रयास।

लगभग सभी सरल समाजों में और कई विकसित समाजों में भी यह पाया जाता है।

पूर्व नियति एकः कैल्विविनिवादी (प्रोटेस्टेंट) विश्वास। इसके अनुसार यह माना जाता है कि व्यक्ति को मुक्ति के लिये ईश्वर द्वारा चुना जाता है। चुनाव ईश्वर की इच्छा पर आधारित है, और व्यक्ति इस संबंध में कुछ नहीं कर सकता है।

तर्क संगतिः पाश्चात्य सभ्यता का मुख्य लक्षण। इसके द्वारा जीवन को नियंत्रित, नियमबद्व बनाया जाता है। व्यक्ति अपने परिवेश का गुलान न रहकर उसका मालिक बन जाता है।

पवित्र और लौकित क्षेत्रः दर्खाइम के अनुसार विश्व को इन दो क्षेत्रों में बांटा जाता है। पवित्र क्षेत्र, शुद्व और उच्च स्तर का होता है। जबकि लौकिक क्षेत्र साधारण या आम वस्तुओं से संबद्व है।

टोटमावादः प्राचीन धर्म जिसमें किसी पशु, पेड़ पौधे आदि को समूह का पूर्वज माना जाता है, जिसकी पूजा होती है।

नौकरशाही पर आधारिततर्क-विधिक राज्य यह आधुनिक समाजों का एक प्रमुख लक्षण है। इसमें संहिताबद्व कानून और सरकार का तर्कसंगत संगठन होता है।

ईश्वरीय आह्वान (calling): किसी कार्य यो पेशे को ऐसा पवित्र कर्त्तव्य मान कर करना, जिसके लिए स्वंय ईश्वर ने व्यक्ति-विशेष को निर्देश दिया हो।

कार्टेल (cartel) : उद्योगपतियों को ऐसा समूह, जो मिलकर बाजार पर एकाधिकार या पूर्ण नियंत्रण कर लेता है।

विश्व के प्रति विरक्तिः विश्व के प्रति आदर-भाव की समाप्ति। लोग विश्व से अब आकर्षित और चकित नहीं होते। वे इसकी शक्तियों तथा रहस्यों को जानकर उन पर नियंत्रण कर लेते हैं, अतः उन्हें यह आकर्षक या रोमाचंक नहीं लगता।

व्याख्यात्मक दृष्टिकोण (interpretative understanding) : वेबर के फर्स्टेहन की पद्धति अंतर्दृष्टि जिसमें सामाजिक घटनाओं का अध्ययन कर्त्ता के दृष्टिकोण के आधार पर किया गया है।

मशीनी या एककारणीयय संबंध (monocausal relationship): एक ही कारण पर आधारित संबंध जैसे ऊष्मा से पानी गर्म होता है एककारणीय व्याख्या है, जहां ऊष्मा को पानी गर्म होने का एकमात्र कारण बताया गया है।

वर्गों का ध्रुवीकरण (polarisation of classes): वर्गों के बीच अंतर बढ जाता है कि वे पृथ्वी के दो ''ध्रुवों''(poles) की तरह एक-दूसरे के विपरीत हो जाते हैं। उनके हित, विचार, भौतिक स्थिति सभी कुछ एक दूसरे के विपरीत हो जाते है।

सतही और सपाट (simplistic): बड़ा ही सरल, विश्लेषण जिसमें गहन तथा जटिल पक्षों की अनदेखी कर दी गई है। जैसे ''सभी नशीली दवाइयां लेने वाले युवक/युवतियॉ टूटे परिवारों से आते है'' सपाट व्याख्या है। इसमें अन्य कारणों, जैसे दोस्तों के असर, गरीबी आदि कारकों की अनदेखी की गई है।

स्टॉक, शेयर या बांडः कम्पनी अथवा उद्यम शेयर, स्टॉक और बांड जारी करके आम जनता को व्यापारिक पूँजी में अंशदान को आमंत्रित करते है। इन तरीकों से जन-साधारण का कंपनी की पूँजी में एक छोटा हिस्सा हो जाता है और उसी अनुपात में लाभांश (डिविडेंड) प्राप्त होता है।

असेम्बली लाइन : यह आधुनिक फैक्टरी प्रणाली का एक तत्व है, जिसमें श्रमिक किसी वस्तु के विभिन्न हिस्सों पुर्जों को ''एसेम्बल'' करते अर्थात् जोड़ते हैं अथवा उनपर कुछ काम करते हैं, इसमें प्रत्येक श्रमिक का अपना निश्चित काम होता है। इससे उत्पादन में गति आती है।

प्रतिमानहीनता (anomie) : दर्खाइम ने इस शब्द का इस्तेमाल ऐसी स्थिति के लिए किया हैं, जिसमें व्यक्ति अपने आपको समाज में रचा-बसा हुआ महसूस नहीं करते।

पूरक (complementary) : ऐसा काम जिससे सहायता या समर्थन मिलता है। उदाहरण के लिए नर्स की भूमिका डाक्टर की भूमिका की पूरक है।

समाज का ''संघर्ष'' मॉडल : यह समाज के प्रति एक दृष्टिकोण हैं, जिसमें व्यवस्था की बजाय उसके तनावों और संघर्षों पर बल दिया जाता है। मार्क्स के अनुसार, उत्पादन के सामाजिक संबंध तनाव एंव संघर्ष का आधार हैं।

समाज का ''प्रकार्यात्मक'' मॉडल : इस दृष्टिकोण में समाज व्यवस्था तथा इस तथ्य पर बल दिया जाता है कि किसी प्रकार विभिन्न सामाजिक संस्थाए और उप-प्रणालियां सक्रिय रहती हैं और सामाजिक व्यवस्था को कायम रखने में योगदान देती हैं।

विषमरूपी : यह ''समरूपी'' को विलोम है। इसका अर्थ है विविधता, अलग-अलग प्रकार। उदाहरण के लिए, भारत की जनसंख्या विषमरूपी है। यहां अलग-अलग जातियां, भाषाएं, धर्म, परम्पराएं आदि मौजूद हैं।

अतिरिक्त मूल्य (surplus value) : जब श्रमिक अपनी श्रम शक्ति कच्चे माल पर खर्च करता है तो वस्तुओं का निर्माण होता है। इस प्रकार, श्रमिक द्वारा माल के मूल्य में वृद्धि की जाती है। श्रमिक द्वारा पैदा किया गया यह मूल्य उसे दिए गए वेतन से कहीं अधिक होता हैं। पैदा किए गए मूल्य तथा प्राप्त वेतन के बीच अंतर ''अतिरिक्त मूल्य'' कहलाता है। मार्क्स का कहना है कि इस ''अतिरिक्त मूल्य'' को पूँजीपति हड़प जाता है।

सहायक पुस्तकें

इकाई 1: उद्विकासवादी परिप्रेक्ष्य

ऐरोन रेमंड(1965). मेन करेंट्स इन सोसिओलोजिकल थॉट.(खंड 1-2), ट्रांस. बाई रिचर्ड हॉवर्ड एंड हेलेन विवर, ग्रेट ब्रिटेनः पेलिकन बुक्स.

कुन, थॉमस एस. (1970). द स्ट्रक्चर ऑफ साईंटिफिक रिवोलुशन. शिकागोः शिकागो यूनिवर्सिटी प्रेसमलिनोस्की, ब्रोनिसला(1948). मैजिक ,साइन्स एंड रेलीजन. न्यू यॉर्क : डबल डे

पारसंस, टेलकोट(1966). सोसायटीज : कंपरेटिव एंड इवोलुशनरी पेर्स्पेक्टिव्स. एंगलवूड क्रीप्सय प्रेंटिस हाल

इकाई 2: प्रकार्यवाद

बोटोमोर, टी. बी.(1975). सोसिओलोजीः ए गाइड टू प्रॉब्लेम्स एंड लिटरेचर. न्यू दिल्लीः ब्लेक एंड संस।

कोजर, लूइस. (1996). मास्टर्स ऑफ सोसिओलोजिकल थाट. जयपुरः रावत

फ्रांकोइस, बौरिकौद. (1981).द सोसीओलोजी ऑफ टेलकोट पारसंस. शिकागोः यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागो प्रेस।

हैरिस, मर्विन एंड ओमा जॉन्सन (2007). कल्चरल अंथ्रोपोलोजी. (7जी एडिशन). बोस्टनः **पेयरसन**

पारसंस, टेलकोट (1975). द प्रजेंट स्टटस ऑफ स्ट्रक्चरल फंक्शनल थियरी इन सोसिओलोजी. इन लूइस ए. कोजर (एड). द आइडिया ऑफ सोसल स्ट्रकचर : पपेर्स इन ऑनर ऑफ रोबर्ट ए मर्टन न्यू यॉर्कः हारकोर्ट ब्रेस जोवानीच

इकाई 3 संरचनावाद

द फाउंडेशन ऑफ स्ट्रक्चरेलिज़्म, ससैक्स : साइमन क्लार्क 1981 द हारवैस्टर प्रैस।

द स्ट्रक्चरल स्टडी ऑफ माइथ एण्ड टोटेमिज़्म : डायमंड लीच 1967 रूटलैज़ न्यूयार्क एण्ड लंडन।

द एलीमेंट्री स्ट्रक्चर्स ऑफ फिनशिप क्लाउडी लैवी स्ट्रॉस : बीकन प्रैल, बोस्टन।

द सैवेज माइंड : क्लाउडी लैवी स्ट्रॉस 1966 : शिकागों यूनीवर्सिटी प्रैस, शिकागों।

इकाई 4: द्वंद्व परिप्रेक्ष्य

कॉलिंस, रैंडल. (एड) 1994. फोर सोशियोलॉजिकल ट्रडिशन्स. ऑक्सफोर्डः ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.

कोसर, लेविस. 1956. द फंक्शन्स ऑफ सोशल कनफ्लिक्ट. रोउटलेज.

मिल्स, सी राइट. 1956. द पावर इलीट. न्यू यॉर्कः ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.

स्कॉट, जॉन. 2001. पावर. कैंब्रिजः पॉलिटी प्रेस

इकाई 5: व्याख्यात्मक समाजशास्त्र

एरोन, रेमंड। (1967)। मेन करेंट्स इन सोशियोलॉजीकल थॉटस (खंड 2)। लंदनः पेंगुइन बुक्स।

बेंडिक्स, रेनहार्ड। (1960)। मैक्स वेबरः एन इंटीलेलेक्चुयल पोर्ट्रेट। न्यूयॉर्कः एंकर।

ब्लूमर, हर्बर्ट। (1969)। सिंबोलीक इंट्रैक्शन : पेर्सपेक्टिव एंड मेथड। बर्कले, सी एः यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया प्रेस।

गिडेंस एंथोनी। (2006)। सोशियोलॉजी (पांचवां संस्करण)। कैम्ब्रिज : पॉलिटी प्रेस।

वेबर, मैक्स। (1968)। इकॉनमी एंड सोसाइटी : एन आउटलाइन ऑफ इंटरप्रेटिव सोशियोलॉजी। बर्कले, सी ए : यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया प्रेस।

इकाई 6: प्रतीकात्मक अन्तःक्रियावाद

ब्लूमर, एच. (1969). सिंबोलीक इंटरेक्शनिज्मः पर्सपेक्टिव एंड मेथड : बरकलेः यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया प्रेस।

गोफमैन एरविन (1959).द प्रजन्टेशन ऑफ सेल्फ इन एवरीडे लाइफ, न्यू यॉर्कः डबलडे

कुन, मैनफोर्ड एच. (1964). "मेजर ट्रेंड्स इन सिंबोलीक इंटरेक्शन थियरी इन द पास्ट ट्वेंटी फाइव इयर्स", द सो सीओलोजिकल क्वार्टर्लि, 5(1): 61-84.

मिड,जार्ज हर्बर्ट(1934). माइंड, सेल्फ एंड सोसाइटी फ्रम द स्टैंड पॉइंट ऑफ ए सोसल बिहाइवियरिस्ट, शिकागोः शिकगी यूनिवर्सिटी प्रेस .

इकाई 7: नारीवादी परिप्रेक्ष्य

चौधरी, एम. (सं.). (2004). फैमिनिज़म इन इंडिया. नई दिल्लीः काली फॉर वुमैन।

जेग्गार, एलिसन. (1983). फैमिनिस्ट पोलिटिक्स एंड ह्यूमन नेचर. ब्रिगटोनः दा हार्वेस्टर प्रेस।

टोंग, रोज़मैरी. (2009). फैमिनिस्ट थोटः ए मोर कोम्प्रिहेनसिव इंट्रोडकशन. कोलोराडोः वेस्टव्यू प्रेस।

वाल्बी, एस. (1990). थेओराइज़िग पेट्रीआर्की. यू केः बासिल ब्लैकवैल।

इकाई 8 : दलित परिप्रेक्ष्य

अम्बेडकर, बी.आर. (1979). कास्ट जेनेसिस, इट्स मैकेनिज्म एंड स्प्रेड. इन अम्बेडकर राइटिंग एंड स्पीचस, वॉल्यूम 1. मुंबईः एजुकेशन डिपार्टमेंट, गवर्मेंट ऑफ महाराष्ट्र।

बेटील, आंद्रे. (1971). कास्ट, क्लास एंड पावरः चेंजिंग पैटर्न्स ऑफ स्ट्रैटीफिकेशन इन तंजोर विलेज. बर्कलीः यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफ़ोर्निया प्रेस।

डूमंट, लुइस. (1999). होमो हाइरेरकीसः द कास्ट सिस्टम एंड इट्स इम्प्लीकेषंस, नई दिल्ली, ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।

ओमेन, टी. के. (1990). प्रोटेस्ट एंड चेंजः स्टडीज इन सोशल मूवमेंट. नई दिल्लीः सेज पब्लिकेशन।

वाल्मीकि, ओमप्रकाश. (2003). जूठनः ए दलितस लाइफ. (ट्रांसलेटेड फ्रॉम हिंदी- जूठन), कोलकताः समय।

इकाई 9 : श्रम विभाजनः दरर्वाइम और मार्क्स

आरों, रेमों, 1970 मेन करैंट्स इन सोशियोलॉजिकल थॉट खंड 1 और 2, पेंगगुइन बुक्सः लंदन (वेबर और दर्खाइम से संबंधित भाग देखें)

कालिन्स, रैंडल, 1986. मैक्स वेबरः ए स्केलेटन की सेज पब्लिकेशन इंकः बेवर्ली हिल्स

जोन्स, रॉबर्ट एलन, 1986. एमिल दर्खाइमः ऐन इंट्रोडक्शन टू फोर मेज़र वर्क्स सेज पब्लिशन इंकः बेवर्ली हिल्स

इकाई 10 : धर्मः दर्खाइम और वेबर

कालिन्स, रैंडल, 1986. मैक्स वेबरः ए स्केलेटन की सेज पब्लिकेशन इंकः बेवर्ली हिल्स

जोन्स, रॉबर्ट एंलन, 1986. एमिल दर्खाइम – ऐन इंट्राक्शन टु फोर मेजर वर्क्स सेज पब्लिकेशन्सः बेवर्ली हिल्स

दखाईम, एमिल, 1964. एलिमेंटरी फॉर्म्स ऑफ द रिलिजिंस लाइफ ऐलन एण्ड अन्विनः लंदन (पुनः मुद्रित)

इकाई 11 : पूँजीवादः मार्क्स और वेबर

बॉटोमोर, टॉम, (सं) 1973. डिक्शनरी ऑफ मार्क्सिस्ट थॉट. ब्लैकवेलः ऑक्सफोर्ड

फ्रॉएंड, जूलियन. 1972 द सोशियोलॉजी ऑफ मैक्स वेबर पेंगुइनः लंदन

मार्क्स, कार्ल, और एंगल्स, एफ. 1938 एफ. 1938. जर्मन आइडियॉलोजी. भाग I और II लॉरेन्स एण्ड विसहॉर्टः लंदन

वेबर मैक्स, 1958. द प्रॉटेस्टेंट एथिक एण्ड द स्पिरिट ऑफ कैपिटलिज्म स्क्रिबरनः न्यूयार्क

वेबर मैक्स, 1958. द रैशनल एण्ड सोशल फाउँडेशन्स ऑफ म्यूजिक सदर्न इलिनॉय यूनिवर्सिटी प्रेसः ग्लेनको

इकाई 12: सामाजिक परिवर्तन एवं रूपांतरण

एत्जिओनी, अमिटै. (1980). ए सोशियोलॉजिकल रीडर ऑन काम्प्लेक्स ऑर्गनाइसेशन. न्यू यॉर्कः होल्ट, रीनहार्ट एंड विंस्टन.

होर्टों, पॉल बी. एंड चेस्टर एल. हंट. 1987 (1984).सोशियोलॉजी. लंदन एट अलरू मक्ग्रॉ -हिल.

ऑगबर्न, विलियम फ. 1950 (1922).सोशल चेंज. न्यू यॉर्कः वाइकिंग.

ऑरेंस्टीन, डेविड माइकल. (1985). दी सोशियोलॉजिकल क्वेस्टः प्रिंसिपल्स ऑफ सोशियोलॉजी. सेंट. पॉल, न्यू यॉर्क एट अल : वेस्ट पब्लिशिंग कंपनी।